चित्र-कथा

प्रोफ़ेसर कन्हैयाप्रसाद सिंह, एम० ए०

नालन्द कालेज, बिहार

प्रकाशक

मंगलप्रसाद सिंह

'वाणी-मन्दिर'

छपरा

प्रथम संस्करण, डेढ़ हजार

मूल्य सवा रुपया

१९३३

मुद्रक

बजरंगबली 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी,

बनारस।

श्रीमान् महाराजाधिराज कुमार श्रीविश्वेश्वर सिंहजी, राजनगर स्टेट, दरभंगा

समर्पण

श्रीमान् महाराजाधिराज कुमार
श्रीविश्वेश्वर सिंहजी,
राजनगर स्टेट, दरभंगा
की सेवा में

पूज्यवर,

श्रीमान् का ऐश्वर्य जितना ही बड़ा है, हृदय उतना ही सरल। श्रीमान् संगीत और साहित्य के परम अनुरागी ही नहीं, विशेष मर्मज्ञ भी हैं। श्रीमान् की गुण-ग्राहकता प्रसिद्ध है, पर उससे भी प्रसिद्ध है श्रीमान् की कृपालुता। इसी से साहस पाकर, अल्पज्ञ और अकिञ्चन होते हुए भी, श्रीमान् के कर-कमलों में अपनी यह तुच्छ कृति श्रद्धा की भेंट के रूप में अर्पित करने की धृष्टता करता हूँ।

विनीत
कन्हैयाप्रसाद सिंह

प्राक्कथन

कहानी साहित्य का एक प्रधान अंग है। मनोरञ्जक रीति से सदुपदेश देना, गूढ़ तत्त्वो को समझाना, मानसिक बल और दुर्बलता पर प्रकाश डालना, पाठको के आन्तरिक भावों को जगाना अच्छी कहानियों का प्रधान लक्ष्य रहता है। कल्पना कहानी की वाटिका को सजीव रखती है और प्रतिभा उस वाटिका को सजाकर अपनी कला का परिचय देती है। आजकल भावुक भक्तगण हिन्दी-साहित्य-सरिता में भी इस वाटिका के अनेकानेक सुरभित सुमन अर्पित करते देख पड़ते है। "चित्र-कथा" के विज्ञ लेखक ऐसे ही भक्तों में से एक हैं। इन्होने अपने हृदय को पाठको के सामने रख दिया है। इनकी मौलिक कहानियों मे कितनी सरलता है, कितनी सरसता है, कितनी सुन्दरता है इसका अनुमान पाठको को उन्हे पढ़कर ही होगा !

दरभंगा

१।३।३४

श्री गङ्गानन्द सिंह

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक मेरा प्रथम प्रयास है। एक को छोड़कर इसकी सभी कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में निकल चुकी हैं। इन कहानियों को पुस्तक का रूप देने का श्रेय सहृदय बन्धु श्रीयुत मङ्गलप्रसादसिंहजी को है। मैं हृदय से उनको धन्यवाद देता हूँ। श्रीनगरराज्य के अधिपति, सुविख्यात विद्वद्वर श्रीमान् कुमार गङ्गानन्द सिंहजी एम. ए. ने 'प्राक्कथन' जोड़कर इस छोटी-सी पुस्तक को गौरव-प्रदान किया है। प्रजा-वत्सल वर्त्तमान महाराजाधिराज दरभंगा-नरेश के सुयोग्य अनुज, कृपालु श्रीमान् महाराजाधिराज कुमार श्री विश्वेश्वर सिंहजी ने इस लघु कृति को श्रद्धा की भेंट के रूप में स्वीकृत करके मुझे उपकृत किया है। ऐसे महान् व्यक्तियों के प्रति, उनके अनुग्रह के लिए, कृतज्ञता प्रकट करना धृष्टता होगी। कहानी के गुण-दोषों के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। वे जैसी हैं, आपके सामने हैं। तथास्तु।

नालन्द कालेज, बिहार
१७-२-३४

कन्हैयाप्रसाद सिंह

सूची

चित्र-कथा

माता का प्यार

(१)

सुकिया की मा लपकती हुई घर के बाहर आई और गरज कर बोली—भला चाहती है तो होठ बन्द कर नहीं तो अभी तेरी खबर लेती हूँ।

बुढ़िया ने क्रोध और दुःख के स्वर में कहा—मेरी ही कोख के परताप से आज तू सुहागिन बनी है, मुझी को कोसती है। तेरे ही लिये कहती हूँ, री, तेरे ही लिये। जरा ऊँच-नीच का हिसाब रख। मेरा रोवाँ कलपेगा तो तेरी जीभ गिर जायगी।

सुकिया की मा—इस बुढ़िया को कोख का बड़ा घमण्ड है। अच्छा ठहर, आज तेरे बेटे के हाथ से तेरी दुर्गति कराऊँगी। उँह, इनके कहने से मेरी जीभ गिर जायगी। अच्छा रह, मेरी जीभ पीछे गिरेगी, पहले तू अपनी तो दुर्गति देख ले!

बुढ़िया—अरी जा, जा। मेरे बेटा जैसा बेटा तो इस टोले में किसी के नहीं था। पर जब से उसने तुझ कुल-बोरिन का माँग छुआ, तब से उसका दिल दूसरा हो गया। तू डाइन है; तूने मेरे बच्चे को सनका दिया। अब इसलिये, उससे जो चाहे, करवा ले।

इतना कहते कहते बुढ़िया की आँखों में आँसू डबडबा आये। वह उठकर पास ही बगीचे की ओर चल दी।

सुकिया की मा ने ताने मारकर कहा—अब चली कहाँ को डर से? ज़रा अपने लाल को आने दे तो दोहरा मज़ा चखा दूँ! अच्छा, भागकर जायगी कहाँ? तुझे एक बार गाँव के बीच सड़क पर लातों से रौंदने का बड़ा हौसला है; उसे अब जल्द पूरा करूँगी।

बुढ़िया कुछ उत्तर न दे सकी; सिर नीचा किये बगीचे की ओर बढ़ती चली गई।

(२)

शत्रु के दुर्व्यवहार पर क्रोध होता है, आत्मीय जन के असद् व्यवहार पर ग्लानि। शत्रु को उचित उत्तर देने में मज़ा आता है, क्योंकि उससे आत्म-गौरव की पुष्टि होती है। आत्मीय जन की कटूक्तियों का प्रतिवाद करने को विवश होने से स्वाभिमानी को ऐसा प्रतीत होता है कि उसके आत्मसम्मान की लाश

रौंदी जा रही है। आत्मसम्मान का नाश तो, उसकी समझ में, तभी हो गया, जब अपना पराये की तरह व्यवहार करने लगा। बुढ़िया को पूर्ण आशा थी कि सुकिया की मा परछाईं की तरह उसकी अनुगामिनी होकर रहेगी और उसकी सेवा करेगी। सुकिया की मा के सम्बन्ध मे बुढ़िया के बड़े बड़े—सच पूछिये तो छोटे छोटे और सरल—कितने ही हौसले थे। सुकिया की मा घर के सारे काम करेगी, मैं ऊपर से देख-भाल कर दिया करूँगी। आरम्भ मे अभ्यास न रहने के कारण, कभी कभी उससे काम विगड़ ही जायगा, तो पहले तो मै खूब बकझक करूँगी, फिर रास्ता बतला दूँगी। सुकिया की मा मेरी डाँट-फटकार से विशेष सावधान हो जायगी। मै तब मन-ही-मन खुश हूँगी। वयस की चपलता के कारण वह कभी कभी पड़ोस की औरतो से झगड़ पड़ेगी। मुझे इसके लिये उलहना मिलेगा, तो मै सुकिया की मा पर खूब रञ्ज हूँगी। वह तो अपनी सफाई देगी, पर मै एक न सुनूँगी। ऐसा ही करना ठीक भी होगा। उसको लड़ने का चसका दूँगी, तो लड़ैत हो जायगी। मुझको बेतरह बिगड़ गई देखकर वह सहम जायगी, कभी कभी रोने भी लगेगी। मै तब उसको समझाकर मना लूँगी। पर उससे झगड़ने वाली पड़ोसिनो को मैं यों ही न जाने दूँगी। ऐसा तो न होगा कि झगड़े का सारा क़सूर सुकिया की मा का ही होगा। ताली दोनो हाथो से बजती है। इसलिये सुकिया की मा के सामने तो नहीं, पर उसके पीछे मैं उससे लड़नेवाली पड़ोसिनों से सवाल-जवाब करके उन्हें भी दोषी ठहराऊँगी, जिससे वे बिना कारण मेरी पतोहू को फिर तङ्ग न कर सकें। मैं जब जब

बीमार पड़ूँगी तब तब सुकिया की मा आठों पहर मेरे बिछावन के पास होगी। मैं जब उसे डाँटूँगी; तब वह कहीं थोड़ी देर के लिये सोयेगी। सेवा की कौन कहे, उसकी भक्ति से ही मैं इतनी प्रसन्न हूँगी कि मेरी बीमारी क़ाफूर हो जाया करेगी। मैं जब तक जीऊँगी, बेटे-पतोहू को देख-देखकर निहाल होती रहूँगी। जब चल दूँगी, तब वहाँ भी अच्छी ही गति मिलेगी। मेरा श्राद्ध ऐसा-वैसा न होगा। ये दोनो कभी जी चुरायेंगे? हौसले से खर्च करेंगे—ऐसा कि गाँव के सभी कहार छक जायँगे। मालिक लोगो तक मेरे श्राद्ध की प्रशंसा फैल जायगी। मरने के बाद भी मेरा नाम रह जायगा।

हाय, बुढ़िया को स्वप्न मे भी यह शंका न हुई थी कि हो सकता है, पाँसा बिलकुल उलटा ही पड़ जाय। बुढ़िया को बहुत जल्दी जल्दी समझना पड़ा कि उसके ये सारे मनसूबे ख़्याली थे। माता के व्यथित हृदय को माता ही समझ सकती है। बुढ़िया चिन्ता से मर्माहत हो रही थी। बेटे के घर में मा का यह हाल! मैं कुत्ती से भी बदतर हो गई! हे जीवन, तू पयान कर। सच है, बुढ़िया सुकिया की मा के तानों का कुछ उत्तर न दे सकी, बाग़ की तरफ बढ़ती चली गई।

(३)

बाग़ के बीच में बैठी बुढ़िया आँसुओं की झड़ी लगा रही है। उसका मन चिन्ता के समुद्र में ग़ोते लगा रहा है। हाय, मैं कितनी अभागिन हूँ! एक तो आधी उम्र में भगवान् ने एक बेटा दिया, पर बेटे ने दूध भी न छोड़ा था और बिना बाप का हो गया। जिस दिन जगनू के बाप ने आँखें मूँद ली उसी दिन

मैं जहर घोलकर पी लेती। पर बेटे के दर्द ने प्राण-पखेरू को उड़ने नहीं दिया, उसी को देख-देख कर जीती रही। कूट-पीस कर जगनू को पोसा। हाय, मालकिन के यहाँ कितनी बार झाड़ू की मार सही, कितनी गालियाँ सुनीं। रात को रोज कुएँ से दस-दस घड़े पानी लाती, तब कहीं जगनू के लिये दो मुट्ठी अन्न मिलता। आज जगनू बड़ा हुआ। समझी, बुढ़ौती में हाथ की लकड़ी मिल गई। पर करम भी सीधा रहता तब तो। इस कसाइन से उसका गँठजोड़ करवाकर मैंने अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारी। यह न होती तो जगनू मेरी यह गति कभी न करता। हाय, यही जगनू है। आँचल नहीं छोड़ता था। मैं न खाती तो यह भी न खाता। मैं उदास होती तो यह बिलख-बिलखकर रोने लगता। मैं जगनू के लिये मालकिन के यहाँ से कोई बढ़िया चीज लाती, तो जगनू अकेला कभी न खाता। इस ज़िद के लिये मैं कितनी बार उसपर बिगड़ी हूँगी। इस मुँहझौंसी का हाथ पकड़ने के पहले दुधमुहे बच्चे की तरह जगनू मेरी छाती से लगा रहा। पर इस सगाई के होते ही वह रंग बदलने लगा। अब वह मुझसे बहुत कम बोलने लगा। मेरे साथ बैठकर खान-पीना भी छोड़ दिया। उदासी इतनी ही दूर तक रहती तो कोई बात न थी। सुकिया की मा मुझे उसके मुँह पर गाली दे देती और वह चुपचाप सह लेता। मैं उसकी ओर देखती, इस आशा से कि वह उसे बरजेगा। पर ऐसा मालूम होता कि सुकिया की मा जगनू की मालकिन है, और जगनू उसके इशारों पर नाचने के लिये लाचार है। मामला यहाँ तक बढ़ा कि कुछ दिनों के बाद घास छीलना, पानी भरना, रसोई

बनाना ये सभी काम मेरे सिर मढ़ दिये गये। भगवान् जानता है, इन काँपते हुए हाथों से मैंने इस घर का कितना काम किया। सुकिया के जनम में इस कलमुँही की कितनी सेवा की। जब तक सुकिया घुटने देने के जोग हुई, उसको दिन-रात टाँगती रही। वह ज़रा भी रोती या उसको टाँगते-टाँगते थक जाने के कारण मैं दो-चार मिनट के लिये भी उसे भूमि में लिटा देती, तो उस दिन सुकिया की मा बेतरह बरस पड़ती। मुझे उस दिन भोजन का दण्ड मिलता, आधी रोटी से ही सन्तोष करना पड़ता। अगले दिन जगनू के कान भरकर उसने मेरी और भी दुर्गति करवाई। जिन्ही हाथों जगनू मुझसे लड़-लड़कर मेरे पैर दबाया करता था, उन्हीं हाथों से उसने मेरी गरदन मरोड़ कर मुझे दरवाज़े के बाहर ढकेल दिया। और यह चुड़ैल—इसने तो कितनी ही बार सूने में लातें मारी होंगी! अब सहा नहीं जाता। तीन बजे रात को उठकर दाल दरना मेरे बूते के बाहर का काम है। उस बेले में नई आँखवालों को भी हाथ-हाथ नही सूझता; मैं कैसे अन्धेरे में टटोलकर यह काम कर सकूँगी। कल रात के लिये यही हुकुम था, पूरा न हो सका तो सवेरे बासी झाड़ू पड़ने लगी। दैव, अब यह दुःख सहन न हो सकेगा। अब यहाँ न रहूँगी। पुरानी मालकिन के पैरो पड़ूगी। मैंने उनके बेटे को गोद मे खिलाया था; वे मुझे अब भी नानी कहकर पुकारते हैं। क्या मुट्ठी भर अन्न न देंगे? वहीं पड़ी रहूँगी, छोटी-मोटी टहल भी कर दिया करूँगी। गाँव को छोड़कर चल देती, पर कोख के दर्द से लाचार हूँ। दूर रहूँगी, तो जगनू की खबर न मिल सकेगी। यहाँ रहूँगी तो कम से कम उसका मुख

तो देखा करूँगी। किन्तु हाय, मैं इतनी अभागिन हूँ कि मेरा जगनू पर मन भर प्रेम करने का अधिकार भी छिन गया। बुढ़िया की मनोव्यथा इतनी बढ़ गई कि वह अपने को सँभाल न सकी। उसका सिर घूमने लगा। वह बैठी न रह सकी। पेड़ की जड़ के सहारे लेट गई। क्षण भर मे निद्रा-देवी ने उसे वशीभूत कर लिया। बुढ़िया सो गई क्या, मानो करुणा-देवी को थोड़ी देर के लिये विश्राम मिल गया।

(४)

दो पहर दिन उठ आया। सुकिया की मा चावल छाँट रही थी। रह-रहकर बुढ़िया के नाम दो-चार गालियाँ पढ़ देती। इतने में जगनू चावल की एक गठरी लिये आ पहुँचा। सुकिया की मा ने झल्लाकर कहा—यही गठरी लेकर कल शाम को ही चले आते, तो क्या हानि हो जाती?

जगनू—कल चिराग़ के बेले तक काम करना पड़ा। दो कोस की राह, अँधेरी रात। थका हुआ था, सो गया। मैया को नही देखता हूँ?

सुकिया की मा—तुम्हारी मैया की रथी निकल गई है, जाकर देख लो। इस बुढ़िया के मारे नाको दम हो रहा है। करनी तो छार सी, खाने को चाहिये सेर भर। हमेशा मुँह से शाप निकालती रहती है। सवेरे उठकर दाल दरना आबरू के खिलाफ है। उसको घर मे रक्खोगे, तो मैं अभी पीहर को चली।

जगनू—आख़िर वह है कहाँ?

सुकिया की माँ—बाग़ मे एक पेड़ के नीचे सोई थी। अभी मालिक की डेउढ़ी की तरफ गई है, अर्ज़ लगाने। जवानी की

कमाई के बदले बुढ़ापे में मालकिन से परवरिस का दावा है। जब कुछ होता है, तो यही कहकर मुझसे ऐंठ किया करती है कि अपना पेट तो तुम्हारी नज़रों के सामने मालकिन का काम करके भर लूँगी; और यहाँ काम करने कहो तो हाथ में कोढ़ हो जाता है। अगर मुझे रखना हो तो उसे घर से कोई सरो-कार न रखने दो। अभी पन्द्रह दिन हुए, साड़ी दी थी। उसको पहन के तो बुड्ढी की लाज बची है, और चली है मुझी से अकड़ करने।

जगनू—बुढ़िया अजर-अमर हो गई है। मर जाती तो बेड़ा पार हो जाता। बैठी-बैठी खाती है। कुछ सेर बच जाता, सो जबतक यह रहेगी, मुश्किल है। इसके सिवा मालकिन के यहाँ इस मतलब से मेरी शिकायत करती रहती है कि मैं उनकी धम-कियों से डरकर इसके पैर पूजूँ। वह ज़माना अब गया। आज तुम ज़रूर उसे एक चिथड़ा देकर साड़ी ले लेना। एक दिन मंगला तेली की माँ से कहती थी कि परगना के कहारों की पञ्चायत में नालिश दायर करूँगी। हरजाई को नहीं मालूम कि इसके पहले ही गला घोटकर उसे मार डालूँगा।

सुकिया की माँ—अच्छा कुछ खा लो। नसीब के खोटे थे। माँ न मिली थी, लङ्का की राक्षसी।

सुकिया की माँ ने एक मोटी रोटी जगनू के हाथ में दे दी। जगनू भूखा था, बड़े चाव से खाने लगा। इतने में घर के पिछवाड़े की ओर से सुकिया दौड़ती हुई आई और कहने लगी—मैया, दादी मालकिन के यहाँ बहुत लोई, तो मालकिन तुमको गाली देने लगी। फिल दादी को भूने चने दिये। दादी ने सभी

चने मुझको दे दिये, आप एक दाना भी नहीं खाया। छोटी दुलहिन की साली लेकल तालाब की तलफ गई है।

सुकिया की मा का मुँह क्रोध से तमतमा उठा। उसने सुकिया के गाल मे दो-तीन चॉटे कस के मारे और उसके सभी चने छीट दिये। फिर दाँत पीसती हुई बोली—तू क्यो उसके पास गई थी? इतना कहकर उसने झट एक चिथड़ा बग़ल में दाब लिया और बड़े बेग से तालाब की तरफ दौड़ी। जगनू चुपचाप रोटी खा रहा था।

(५)

तालाब सुनसान था। घाट पर बैठी बुढ़िया अकेली धीरे धीरे कपड़ा साफ कर रही थी। सुकिया की माँ ने अचानक पहुँच कर उसके आँचल को ज़ोर से झटका दिया और गालियाँ बरसाती हुई बोली—कोढ़िन, पहले मेरी साड़ी खोल दे, फिर जहाँ काम करना पसन्द हो, कर। नहीं तो अभी पानी मे डुबो दूँगी। इस घोर अपमान से बुढ़िया क्षोभ से पागल हो उठी। उसने थर थर काँपते हुए कहा—साड़ी तेरे बाप को नहीं, मेरे बेटे को दी हुई है। सुकिया की मा ने उसे ज़ोर से धक्का देकर घुटने भर पानी में ढकेल दिया और कई लातें भी मारी। फिर बुढ़िया की साड़ी बलात् खीच, चिथड़ा उसकी देह पर फेंक, चलती बनी।

लाज बचाने की चिन्ता में शारीरिक कष्ट को ध्यान मे न लाकर बुढ़िया ने झट शरीर मे चिथड़ा लपेट लिया और किनारे से निकलकर टीले की ओट मे जा बैठी। बुढ़िया थोड़ी देर तक फिर चोट सहन करने मे सचेष्ट रही। इस व्यापार में कोई दस

मिनट तक भूमि की ओर सिर झुकाये आँखें मूँदे रही ! अनन्तर गहरी साँस भरकर ऊपर देखा तो सामने सुकिया खड़ी थी ।

काँपते हुए स्वर से बुढ़िया ने कहा—तू मेरे पास क्यों खड़ी है, घर को जा ।

सुकिया—दादी, तू जहाँ जायगी, मैं भी वहीं जाऊँगी ।

बुढ़िया—अच्छा, किनारे में जो साड़ी रखी है, ज़रा ले तो आ ।

सुकिया साड़ी ले आई ।

बुढ़िया—इसे मालकिन को दे देना और मेरे बारे में पूछें, तो कहना मैं नहीं जानती ।

सुकिया—तुम कहाँ जाओगी ।

बुढ़िया—मैं कहीं न जाऊँगी, तुम लौट कर आओ, तब तक मैं यहीं रहूँगी । अच्छा सुकिया, यह तो बता, जगनू मजदूरी से लौटकर आया ?

सुकिया—हाँ, गेहूँ की एक गठली भी लाया है ।

बुढ़िया—थका हुआ होगा, कुछ खाया कि नहीं ।

सुकिया—हाँ, तुम्हारी साली छीनने को मा आने लगी थी, उसके पहले उसको एक लोटी दी थी । बाबू उसको खा लहा था ।

बुढ़िया—अच्छा, कपड़ा ले जा । यह सब बात मालकिन से न कहना ।

सुकिया—नहीं दादी, कभी न कहूँगी । मैं तो जो तुम कहती हो, वही कलती हूँ ।

सुकिया के जाते ही बुढ़िया लोगों की नज़र बचाती हुई गाँव के बाग़ों होकर भागने लगी । गाँव के बाहर पहुँचकर उसने

दम लिया। एक पेड़ के तले बैठकर किस दिशा को भीख माँगने जाऊँ यह सोचने लगी। इस विचार में लीन रहने पर भी उसकी आत्मा को यह चिन्ता बनी थी—भीख माँगकर पेट तो भर लूँगी, पर जगनू का मुँह देखने को न मिलेगा। पर यहाँ रहूँ भी तो कैसे? सुकिया की मा ने मुझे नङ्गी तक कर डाला—यह तो मेरे डूब मरने की बात हो गई। गाँव में रहूँगी, तो लोग मुझे जब देखेंगे, इस बात को चलाये बिना नहीं रहेंगे। दर्द दिखलानेवाले तो थोड़े ही होते हैं; बहुतेरों को तो मेरी कहानी कहने-सुनने में मजा ही आयेगा? बिरादरी में, गाँव मे, ऐसी दुर्गति उठाकर रहना ठीक नहीं। इससे तो भीख माँगना लाख दरजे अच्छा है। पर हाय, क्या करूँ, जी नहीं मानता। जिस जगनू को दाँत लगाकर पोसा, इतना बड़ा किया, उसको आँखो की ओझल कर दूँ? जी नही मानता। मुझसे ऐसा न हो सकेगा, किसी कोखवाली से ऐसा न हो सकेगा। लोग हँसेंगे, यही न? जी मसोसकर सहती रहूँगी। मालकिन के यहाँ से जगनू की ख़बर तो मिलती रहेगी। बुढ़िया ने दृढ़ निश्चय करके गाँव की तरफ तेज़ी से चलना शुरू किया। पर थोड़ी दूर भी न गई होगी कि एकाएक रुक गई। गहरी साँस भरकर बुढ़िया ने सोचा—ओह मेरे भाग मे अब जगनू का मुँह देखना नहीं है, इस चिथड़े को देखते ही मालकिन उबल पड़ेंगी। मालिक को तो बहाना मिल जायगा। मेरे बच्चे की गाय, बछिया ज़ब्त हो जायगी, पचास से कम का दण्ड न करेंगे। जूतों की मार उसे अलग पड़ेगी। उस घड़ी मैं उनके पैरो भी पड़ूँगी, तो न मानेंगे। मेरा बेटा बिक जायगा। इन आँखों से उसको मार खाते नही

देख सकूँगी। दयामय, जीवित अवस्था में ही तूने जगनू से मुझे अलग कर दिया। बुढ़िया विह्वल हो उठी। पर अब गाँव की ओर जाना भी उसे मञ्जूर नहीं। बेटे की कुशल-कामना ने बेटे को केवल देखते रहने की लालसा को परास्त किया। बुढ़िया पूरब दिशा को चली जा रही है—नहीं, चिथड़ा लपेटे सदेह पुत्र-वत्सलता पूरब दिशा को चली जा रही है।

(६)

किशुनगंज के स्टेशनमास्टर अपने डेरे पर कुलियों की छुट्टी की दरख़्वास्त सुन रहे हैं। जिसको जितना मुनासिब समझा उतने दिनों की छुट्टी दी और समय पर आने की ताक़ीद कर दी। फिर लिस्ट की ओर देखकर पुकारा—'जगनू'।

जगनू—सरकार।

स्टेशनमास्टर—तू छुट्टी क्यों नहीं माँगता? यहाँ दो वर्षों से पड़ा है। एक बार भी घर नहीं गया। तेरा घर तो यहाँ से दो सौ मील है?

जगनू—सरकार, मिहिरिया मेरे सिर चढ़ी रहती थी। एक दिन मामूली-सी बात से रूठकर पीहर चली गई। सुना है, वहाँ किसी और से सगाई करनेवाली है। मेरी एक लड़की है। वह भी अभी उसी के साथ नानी के यहाँ है। उस पर मेरा ज़ोर है। उसे यहीं बुला लेने की सोच रहा हूँ।

स्टेशनमास्टर—तेरे मा है?

जगनू—मा तो, तीन वर्ष हुए, घर से भागकर चली गई थी। ख़बर नहीं, जीती है या मर गई।

स्टेशनमास्टर—अच्छा, तो तुम घर जाना नहीं चाहते,

अच्छी बात है। पर मेरी इच्छा है कि अब तुम अवकाश मे मेरी घोड़ा-गाड़ी हाँकने का काम करो; भण्डार का काम कञ्चन को देता हूँ।

जगनू—सरकार मुझसे भण्डार का काम छोड़कर और कोई काम न हो सकेगा।

स्टेशन-मास्टर—(कुछ सोचकर) अच्छा, यही सही। पर देखना, सदावर्त के काम मे त्रुटि न होने पावे। ऐसा न हो कि रविवार को कोई भूखा नङ्गा मेरे द्वार से विमुख लौटे।

जगनू—नहीं सरकार, ऐसा न हुआ है, न होगा। मै तो सरकार के हुकुम का पाबन्द हूँ।

(७)

आज लगभग पन्द्रह दिनो से किसुनगंज मे विसूचिका का भयानक प्रकोप है। प्रतिदिन प्रति मुहल्ले से दस से बीस मुर्दे श्मशान को भेजे जाते हैं। बाज़ार की अधिकांश दूकानें बन्द रहा करती है; जो खुलती भी हैं, वे चार बजे दिन को ही बन्द हो जाती है। क़सबे में कहीं चहल-पहल का नाम नहीं, हर जगह सन्नाटा दीख पड़ता है। बहुत आवश्यक काम पड़ने पर ही लोग बाहर आया जाया करते हैं। मालूम होता है प्रचण्ड काल ने इस छोटे से क़सबे को एकबारगी निगल जाने के लिये अपना विकराल मुख खोल दिया है। किसुनगंज के स्टेशन-मास्टर भी कल प्रातःकाल ही से विसूचिका से ग्रस्त है। समय तो यहाँ ऐसा बीत रहा है कि भाई भाई को छोड़कर चल दे; पर स्टेशन-मास्टर का उपकार उनके मातहतो के रोम रोम मे समाया हुआ है। इसलिये सारा स्टेशन उनकी सुश्रूषा में लगा है।

जगनू भी कल आठों पहर एक ताव से खड़ा रहा। फल यह हुआ कि आज सवेरे वह भी विसूचिका देवी का कृपापात्र बन गया। किन्तु हाय, ऐसे कुसमय में एक कुली के लिये परदेश में बीमार पड़ जाना जीते ही मौत के मुँह मे पड़ जाने के बराबर है। इस नई रोशनी के ज़माने मे कुलियों की जान सबसे सस्ती चीज़ समझी जाती है। जगनू कोई रेलवे-विभाग का उच्च पदाधिकारी नही था। स्टेशन-मास्टर उसपर ज़रूर मेहरबान थे; पर अभी वे ख़ुद ही होश-हवास में नहीं थे। जगनू के मेल के दो-तीन कुली थे, पर वे छुट्टी लेकर घर चले गये थे। जगनू को दस्त पर दस्त हो रहा है। जब तक बन सका, कुएँ से पानी खींचकर शौच करता रहा। अपने को असमर्थ हो गया देख कर जगनू ने सोचा—'अब पानी खींचने का दम नहीं है। यहाँ बार बार कुएँ से पानी खींचकर मुझे कौन देगा? सब तो अपनी अपनी जान की फिक्र मे हैं। हाय ईश्वर! क्या करूँ!' अचानक जगनू को जैसे कुछ स्मरण हो आया। वह रेलवे लाइन के किनारे होकर धीरे धीरे चलने लगा। स्टेशन से कुछ दूर हटकर, रेलवे लाइन के समीप ही एक छोटा सा मकान था। मकान रेलवे कम्पनी का ही था, पर अब बे-काम समझा जा चुका था। मकान के पास ही एक गढ़ा था, गढ़े में पानी भरा था। जगनू धीरे धीरे वही पहुँच गया। संयोग से उस मकान के भीतर एक चटाई बिछी थी। जगनू ने जीवन की आशा छोड़कर चटाई की शरण ली। जलती धूप में जगनू गढ़े के किनारे दस्त करता और फिर चटाई पर आकर लेट जाता। दो घण्टे के बाद जगनू में चटाई से उठने की भी शक्ति

न रही। वह पीड़ा से कराहने लगा। पीड़ा इतनी बढ़ी कि जगनू होश मे न रह सका। जगनू बेहोश है। एक तो यह जगह ही चलती राह से अलग, दूसरे ऐसी कुघड़ी; कोई भूला-भटका राही भी पास होकर जाता-आता नही दीख पड़ता। बस मकान के भीतर है बेहोश जगनू, और बाहर लू की लपट और गज़ब का सन्नाटा। गढ़े के किनारेवाले ठूठ पेड़ पर बैठा 'कौआ' बीच-बीच में कॉव की कठोर ध्वनि करके सन्नाटे को और भी डरावना बना रहा है। कौआ मानो जगनू के प्राणो को कूच करने के लिये नोटिस दे रहा है।

(८)

एंजिन की सीटी और गाड़ी की धड़कन की आवाज़ से जगनू की ऑखे एकाएक खुल गईं। उसने अपने को होश में पाया। पड़ा-पड़ा छत की ओर देखने लगा। कमज़ोरी बहुत थी, पर होश पूरा था। किन्तु जगनू को अपने अस्तित्व में सन्देह होने लगा। क्या मै अभी तक जीता हूँ ? अगर मेरे कान दुरुस्त है तो यह गाड़ी छः बजे भोर की है। तो क्या मै जीता हूँ, अर्थात्, तो क्या मैं चौबीस घण्टे तक जीता रह गया हूँ ?- हो नही सकता। पर होश तो मालूम हो रहा है। ओह नही, यह होश नहीं, बुझनेवाले दीपक की अन्तिम जगमगाहट है। हाय, आज जगनू के प्राण-पखेरू उड़ रहे है और कोई अपना पास नही ! सुकिया की मा, अरी सुकिया की मा, तूने मुझे बड़ा धोखा दिया। हाय, मैंने तेरे लिये क्या-क्या नही किया ! ओफ ! बचपन मे मेरी मैया मुझे बीमार देखकर मेरी कैसी सेवा करती थी ! अगर वह आज होती ! हाय, मैंने ही उस

राक्षसी के मोह में पड़कर मैया को चिथड़ा पहनाकर घर से निकाल दिया था ! वह चिथड़ा, हाय, वह चिथड़ा मुझे स्मरण है। हाय, मैया वह चिथड़ा पहने भीख माँगती-माँगती मर गई होगी ! ओफ, धिक्कार है मेरे जीवन को ! भगवन्, क्या मुझे एक बार मैया से भेंट न होगी ? सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—'मैया'।

जगनू को ऐसा मालूम हुआ कि वही चिथड़ा पहने मैया उसके सामने आकर खड़ी हो गई। तुरन्त आँखें मूँद कर जगनू मन ही मन अपने को बड़ी कठोरता से कोसने लगा—जब मैया सदेह तेरे द्वार पर थी तब तो तूने उसकी सारी दुर्दशा कर दी, आज मन की गढ़ी मैया को देख कर जी को सन्तोष देता है ! ओह, भीख माँगती मैया ने कितनी जगह ठोकरें खाई होंगी। न जाने कितने दिन उसको निराहार रहना पड़ा होगा। मानसिक व्यथा और शारीरिक कष्ट को मैया दो महीने से अधिक न सँभाल सकी होगी। बेटे की—मेरे जैसे कसाई बेटे की—सताई एक एक बूढ़ी मा इतने दिनों से अधिक न ठहर सकेगी। अवश्य ही मैया ने किसी पेड़ के नीचे या तालाब के किनारे तड़प तड़पकर प्राण दे दिये होंगे ! चाण्डाल, आज तीन वर्षों के बाद मैया से भेंट करना चाहता है जब कि आज उसकी दूसरी वर्षी होनी चाहिये। जगनू ने निराशा की लम्बी साँस लेकर आँखें खोलीं—सामने वही चिथड़ा पहने मैया खड़ी थी।

जगनू ने आँखें मल के देखा—सामने वही चिथड़ा पहने मैया खड़ी थी।

जगनू के शरीर में एक अपूर्व स्फूर्ति आने लगी, तत्काल

उसे स्पष्ट सुनाई पड़ा—'बेटा'।

जगनू चटाई से उछल कर सामने खड़ी बुढ़िया के पैरों पर गिर पड़ा। दोनों बेतरह रोने लगे। बुढ़िया ने रोते समय बार बार जगनू को चूमा। कोई एक घण्टे के बाद दोनों ने एक दूसरे को अच्छी तरह देखा। तब तक बेज़ार रोते रहे। जब दोनों चुप हुए तब जगनू ने पूछा—मैया, तू यहाँ कैसे आई?

बुढ़िया—बेटा, मै यहाँ जब से तू है तभी से हूँ। तुझे देखने की लालसा से भीख माँगती माँगती यहाँ आ गई थी। इसी बाज़ार में और जगह भीख माँगती थी, तेरे मालिक के यहाँ पहचानी जाने के डर से नही आती थी। कल तेरी बीमारी का हाल मालूम हुआ तो मुझसे रहा नही गया। जिस घड़ी मैं यहाँ पहुँची थी, तुझे चेत नहीं था। कोई तेरी सेवा करनेवाला नही था, तो जहाँ तक हो सका तेरी सेवा की अब तो जी अच्छा है न?

बुढ़िया की ये बातें सुनकर जगनू का जी उमड़ आया। वह कुछ उत्तर न देकर फूट फूट कर रोने लगा। बुढ़िया ने उसे बार बार चूमकर ढाढ़स दिया। जगनू ने चुप होकर घर की सारी कहानी बुढ़िया से कह सुनाई। दो तीन दिन तक जगनू कमज़ोर रहा। बुढ़िया के पास भीख के कई तरह के अनाज थे। वही जगनू के पथ्य मे काम आये। पर जगनू ज्योंही उठ खड़ा हुआ, बुढ़िया बीमार पड़ गई। वही मकान, वही चटाई, जगनू सेवा करने लगा। पर बुढ़िया के कोई खास बीमारी नही थी। उसके सारे अंग धीरे धीरे शिथिल हो रहे थे। ऐसा मालूम होता था, वह इच्छापूर्वक शरीर छोड़ रही है। उसकी आँखों से क्षमा और शान्ति बरस रही थी, उसकी मुखाकृति कष्टप्राप्त विश्राम

की द्योतक हो रही थी। बुढ़िया की अवस्था उस पथिक की सी थी जिसने बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलने के बाद अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर रुकी हुई साँस छोड़ी हो, और फिर थकान मिटाने के लिये निद्रा-देवी का आह्वान कर रहा हो। इस बीमारी की हालत में बुढ़िया ने जगनू को बहुतेरे उपदेश दिये। पास बिठाकर कहा—बेटा, सुकिया की मा तुम्हारी पहली व्याही है, उसको समझा-बुझाकर घर ले आना। नहीं तो सुकिया कही की न रह जायगी। मेरा विषय लेकर उसको मत कोसना। हाँ, उसको भली राह पर लाने के लिये कुछ दिन तक उसपर कड़ी निगाह रखना। जगनू ने बहुत हाथ-पाँव मारे कि मैया बच जाय। पर जगनू के भाग्य में बुढ़िया की और सेवा करना बदा नहीं था। आठ ही घण्टों के बाद बुढ़िया का ऊर्द्ध्व स्वास चलने लगा। जिस घड़ी बुढ़िया की आँखें मुँद रही थीं, बुढ़िया का हाथ जगनू के सिर पर था और जगनू के हाथ बुढ़िया के पैरों पर।

वरदान

(१)

वह पुष्पविहीन लता थी। उसके रूप की सुन्दरता अर्थ-गौरव-शून्य कान्तपदवाली कविता के सदृश सहृदय को खटकती थी। वह वन्ध्या थी।

उसका अञ्चल किसी नन्हे से बच्चे की खोज में आकाश की भाँति व्याकुल होकर फैला हुआ था। उसका हृदय तप्त-बालुकामय महामरुस्थल की नाईं लू की उसासें लिया करता था। मातृपद के हरे-भरे सुख की शीतलता उसकी रट थी, सुधा-नीर बरसाने वाला भाग्य-विधाता रूपी मेघ उसका ध्यान था।

उसे गाँव के विशाल मन्दिर से लेकर सिन्दूर-राग-रञ्जित क्षुद्र से क्षुद्र पत्थर किम्बा मिट्टी के लोदे तक मे देवता का रूप

भासित होता था। वह प्रत्येक देव-स्थान में नित्य नियमित रूप से अपनी सेवा भेजती थी। पुजारीजी, महन्तजी, ओझाजी, पुरोहितजी आदि सभी जी-उपाधि-धारियों को प्रायः दक्षिणा देते रहना उसका व्रत था। रविवार के प्रातःकाल से सायंकाल तक उसके द्वार पर कङ्गालों की भीड़ लगी रहती थी। उन्हें अपने हाथों भोजन कराती हुई वह साक्षात् अन्नपूर्णा की भाँति सुशोभित होती थी।

किन्तु खेद! किसी देव की अनुकम्पा अथवा किसी मनुष्य के आशीर्वाद से उसकी मनोकामना सिद्ध नहीं हुई। उसकी आयु के साथ उसकी आशा भी दिन प्रति दिन क्षीण होती जाती थी। आशा के उज्ज्वल आलोक को पीछे छोड़कर निराशा के अन्धकार की ओर जाने वाले व्यक्ति के पैर आगे बढ़ते चले जाते हैं, किन्तु उसका मुख अपनी पीठ की दिशा में ही देखता रहता है। निर्मम नियति की सताई उस अभागिनी की भी यही दशा थी।

(२)

उसका नाम था गोमती। पतिदेव बाबू कैलाशचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध थे। कैलाश बाबू की मानसिक अवस्था गोमती से अच्छी नहीं थी। उनकी पचास हज़ार की वार्षिक आय वाली सम्पत्ति उन्हें काटे खाती थी। मेरे बाद मेरा कौन वंशज इस विपुल वैभव का उपभोग करेगा? यदि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" नामक शास्त्रोक्ति सत्य है तो मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या दुरवस्था होगी?—ये प्रश्न उठ उठकर उनके हृदय को रुला देते थे।

धूलि-धूसरित शिशु सन्तान को गोद में उठाकर चूमने के लिए उनका जी तरस कर रह जाता था। प्राणों की इस चिर

अभिलाषा की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने जानते कोई प्रयत्न रख नहीं छोड़ा था। न जाने कितनी धर्मशालायें बनवाई, कितने पुस्तकालय खोले और कितने अनाथालयो का निर्माण किया। साधु-सन्तो की सेवा भी उन्होने चरम सीमा तक पहुँचा दी। किन्तु तो भी उनको इष्ट लाभ नही हुआ। उनके दोनो लोको के अन्धकार को दूर करनेवाला वह निर्मल प्रकाश नही चमका।

(३)

देखते देखते इस दुखी दम्पति की आयु ने चालीस की परिधि को लाँघ दिया। कैलाश बाबू हताश होकर बैठ गये। गोमती ने भी हार मानी। पूजा-पाठ, जप-योग, दान-प्रदान का नियम जैसे तैसे चलता रहा, किन्तु उनके करने कराने में अब पति-पत्नी की पहले की सी तत्परता नही दीख पड़ती थी। कैलाश बाबू का धर्म विश्वास कीट-दंशित वृक्षमूल की नाईं हिलने लगा। उन्होने स्मृति की फूँक से अपने अतीत जीवन की डायरी के प्रत्येक पृष्ठ को उलट डाला, पर उसकी किसी पंक्ति ने उन्हे नही बतलाया कि उन्होंने ऐसा कौन सा पाप किया है जिसका ऐसा भयानक दण्ड वे भोग रहे है। फलतः उनकी धर्मनिष्ठा तीव्र गति से मन्द पड़ने लगी। निदान जीवन के ऐसे ही उदासीन काल मे एक दिन उन्हे एक छोटे मोटे साधु बाबा का आतिथ्य-सत्कार करने को विवश होना पड़ा। साधुजी ने कैलाश बाबू के परिवार की परिस्थिति जानकर उनसे कहा—बाबू साहब, मैं कोई सिद्ध योगी नहीं हूँ कि तुम्हें सन्तान का वर दे दूँ। किन्तु यदि मेरी बात मानो तो मैं एक उपाय बतलाऊँ।

साधु जी—मैं सुदूर उत्तर प्रान्त का रहनेवाला हूँ। मेरे

प्रान्त में निर्मला नामक एक छोटी-सी नदी है। उस नदी के तट पर एक छोटे से ग्राम में एक तपस्विनी आज बीस वर्षों से निवास कर रही है। तुम पत्नी समेत उसकी कुटी पर जाओ और उससे वर माँगो। वह न तो कोई मूर्ति पूजती है, न कोई झाड़-फूँक करती है, केवल अपने इष्ट देवता का ध्यान करती रहती है। वास्तविकता की परख करनेवाले लोग ही उसके महत्व को समझते हैं। उसने आज तक न जानें कितने लोगों की मनोकामना पूरी की है। उसके आशीर्वाद से तुमको सन्तान का सुख अवश्य मिलेगा।

कैलाश बाबू ने तो बहुत टालमटोल की पर गोमती इस अन्तिम प्रयास को हाथ से जाने देने को तैयार नहीं हुई। निदान तपस्विनी की शरण में पहुँचने का प्रस्ताव पास हुआ। साधुजी से ठिकाना पूछ लिया गया।

(४)

निर्मला का तट था, तपस्विनी की कुटी और निशा काल का अँधेरा।

तपस्विनी एक टूटी चटाई पर बैठी दिये के धुँधले प्रकाश में एक काग़ज़ के टुकड़े को तल्लीनता से देख रही थी। उसके नेत्रों से आँसू टपक रहे थे। ओठ काँप रहे थे। उसके उजले काले केश उसके मुख-प्रदेश को जहाँ तहाँ आच्छादित किये हुए थे। थोड़ी देर के बाद ध्यान से निवृत्त होकर उसने सामने की ओर देखा। उस घड़ी वहाँ यथानियम सैकड़ों भक्तजन उपस्थित थे। गोमती और कैलाश बाबू भी एक कोने मे दबककर बैठे थे। कैलाश बाबू ने मौन रहना ही उचित समझा। पर

गोमती ने स्तब्धता को भंग करते हुए कहा—माताजी, हम और हमारे पति बहुत दूर दक्षिण प्रान्त से आपकी शरण में आये हैं। और सब प्रकार से सुखी रहते हुए केवल निस्सन्तान होने के कारण हम लोगों का परलोक अन्धकारमय है। दया की भिक्षा दीजिए। इतना कहकर गोमती फूट-फूटकर रोने लगी। कैलाश बाबू के नेत्रों से भी अश्रुधारा बह निकली। पर वे इस प्रकार सिर को नीचा किये हुए बैठे थे कि लोगों ने उनकी कातरता को भली भाँति नहीं देखा।

तपस्विनी ने कहा—'बेटी, मैं तो प्रत्येक प्राणी का कल्याण चाहती हूँ। किन्तु तुम्हे देखकर मेरा वात्सल्य भाव उमड़ आया है। मेरा हृदय तुम्हे आशीस देता है। यदि मेरी इष्टोपासना शुद्ध है तो तुम निकट भविष्य मे ही मातृपद पर अधिष्ठित होगी दम्पति को मुँह-माँगा वर मिला। पति-पत्नी दोनों उलटे पैर घर लौट आये। तपस्विनी के आश्रम के निकटवर्ती लोगों के मुख से उसका माहात्म्य सुनकर उनके जी को बहुत कुछ ढाढ़स और विश्वास हुआ।

[५]

तीन वर्ष बीत गये। पालने में झूलता हुआ बालक-शिशु किलकारियाँ भर रहा था। उसको देख देखकर गोमती और कैलाश बाबू आनन्द-विभोर हो रहे थे। उनका हृदय तपस्विनी के प्रति श्रद्धा और भक्ति से उमड़ रहा था। कैलाश बाबू ने गद्गद कण्ठ से कहा—गोमती, अब अधिक आलस्य ठीक नहीं। उस देवी के चरणों में इस बच्चे को रखकर भक्ति के पुष्प चढ़ाना हमारा परम कर्त्तव्य है।

गोमती ने कहा—मैं तो कब से कह रही हूँ कि चलिये।

दूसरे ही दिन कैलाश बाबू बड़ी तैयारियाँ करके परिवार समेत तपस्विनी के आश्रम की ओर चल पड़े।

[६]

जिस घड़ी कैलाश बाबू अपने परिवार के साथ तपस्विनी की कुटी पर पहुँचे, वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी। सैकड़ो मनुष्य उसको घेरकर बैठे हुए थे। उसका अंग अंग शिथिल हो रहा था, किन्तु उसमें चेतना पहले की सी बनी हुई थी। दिनकर के उज्ज्वल प्रकाश में उसके स्पष्ट दर्शन से कैलाश बाबू के शरीर मे एक अज्ञात-पुलक का संचार हो आया। उन्हें जान पड़ा कि उनके मानस-सरोवर का बड़े वेग से मन्थन हो रहा है। यह मन्थन एक ऐसी अपूर्व मधुर वेदना का उत्पादक था जिसका अर्थ उनके लिये एक पहेली-सा था। उनकी बुद्धि उस अर्थ तक पहुँचकर भी उसको पकड़ नहीं सकती थी। कैलाश बाबू ने अपने को सँभाला और मन में कहा—'यह सब इस देवी के दर्शन का माहात्म्य है।' फिर पत्नी-पुत्र समेत बड़े भक्ति भाव से तपस्विनी के चरणों में मस्तक नवाकर एक ओर जा बैठे। तपस्विनी ने उपस्थित सेवको और भक्तों को सम्बोधन करके कहा—भ्रातृगण, मेरी अन्तरात्मा मुझसे कह रही है कि आज मुझे इस शरीर का त्याग कर देना पड़ेगा। अतएव आपलोग कृपाकर मेरी अन्तिम इच्छा को सुन लें और हो सके तो उसे अवश्य पूर्ण कर देंगे। मेरी इच्छा यही है कि आपलोग मेरी पूजा की सामग्री को भी मेरे मृतक शरीर के साथ ही भस्म कर देने का कष्ट उठावेगे। इतना कहकर तपस्विनी चुप हो गई, फिर

बड़े कष्ट से काँपते हुए हाथ से उसने उस डिबिया को निकाला जो उसके बिछावन के नीचे रखी थी। इसी डिबिया में उसकी पूजा की सामग्री थी। उसी की सहायता से वह एक साधारण स्त्री से वरदायनी तपस्विनी के पद पर पहुँच गई थी। उसने धीरे धीरे डिबिया को खोला। डिबिया मे बस एक काग़ज़ का टुकड़ा था और छोटी सी पुड़िया। तपस्विनी प्रतिदिन इसी काग़ज़ के टुकड़े को बाँचती हुई घंटो आँसू बहाया करती थी। किन्तु उस काग़ज़ पर कौन सा महामन्त्र अंकित था इसका पता किसी को नही था। वह क्षुद्र पुड़िया भी शेष संसार के लिए एक विचित्र रहस्य थी। तपस्विनी ने काग़ज़ को खोलकर देखा और उसे हृदय से लगा लिया। फिर पुड़िया को खोला। उसमे लाल भस्म भरी थी। एक चुटकी लेकर सिर आँखो मे लगाई और तब ध्यानस्थ हो गई। एक ही क्षण मे उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बहने लगी। उपस्थित जनता चित्र-लिखित-सी यह व्यापार देख रही थी। एक अपूर्व शान्ति छा गई। पत्तो ने हिलने का काम बन्द कर दिया। हवा रुक गई। देखते-देखते तपस्विनी की आँखें सदा के लिए मुँद गईं।

उपस्थित जन-समूह ने उच्च स्वर से कहा—तपस्विनी की जय।

कैलाश बाबू ने भक्ति के आवेश में आकर सबसे निवेदन किया—भाइयो, हम लोगों को तपस्विनी देवी की अन्तिम इच्छा को अवश्य पूर्ण करनी चाहिए।

इतना कहकर उन्होने बड़ी तत्परता से उस काग़ज़ के टुकड़े को तपस्विनी के शरीर पर से उठा लिया। वह उसके अक्षरों को

पढ़ना नितान्त अनुचित समझ रहे थे पर कौतूहल के वशीभूत होने के कारण उनकी आँखें उनपर दौड़ ही गईं। पत्र को एक छोर से दूसरी छोर तक बाँचकर वे हतबुद्धि से होकर कुछेक क्षण निश्चल रूप से खड़े रहे अनन्तर फूट-फूटकर रोने लगे। उनकी यह दशा देखकर लोगों ने उनके हाथ से पत्र छीन लिया और उसे पढ़ा। पत्र में यही महामन्त्र लिखा हुआ था—

प्यारी जयन्ती,

तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैंने तुम्हें आज से अपनी अर्द्धाङ्गिनी बना लिया। हमारे तुम्हारे बीच के इस सम्बन्ध का साक्षी यही पत्र रहेगा। एक पुड़िया सिन्दूर इसीके साथ भेज रहा हूँ जो तुम्हारे सोहाग का आज से श्रीगणेश करेगा।

—तुम्हारा अभिन्न हृदय
कैलाश

पत्र पढ़ चुकने पर लोगो का कौतुक बहुत बढ़ गया। बड़े यत्न से कैलाश बाबू होश में लाये गये। उन्होने तब काँपते हुए स्वर में लोगों को सारा रहस्य बतलाया—किस प्रकार जीवन के उस शुभ्र प्रभात में जब कि उनके यौवन का शैशव काल था उन्होने उस जयन्ती-नाम-धारिणी कुमारी को मातृ-पितृ-विहीन होने के कारण अनाथिनी की अवस्था में देखा, किस भाँति उन्होने उसके मुख पर प्रतिभासित उसके हृदय-सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने के वचन दिये, किस भाँति फिर अपने घर जाकर धन के लोभ में पड़कर अपनी वर्तमान स्त्री से विवाह किया और उस दिव्य कन्या कुमारी को विस्मृति के अँधेरे कूप में फेंककर निश्चिन्त हो गये, फिर किस

भाँति गोमती-नाम-धारिणी पत्नी से पुत्र की कामना विफल होते देख निराशा की शरण ली और सबके उपरान्त किस भाँति फिर उसी चिरपरिणीता देवी जयन्ती के पातिव्रत धर्म के प्रताप से उन्हें पुत्र लाभ हुआ, आदि।

सारी घटना का वर्णन करते करते कैलाश बाबू पुनः शोक से विह्वल हो गये। गोमती ने तपस्विनी के चरणों में माथा नवाकर रो रो कर क्षमा माँगी। जब बहुत देर तक विलाप करने के बाद दोनों ने किसी प्रकार अपने को सँभाला तब सर्व-सम्मति से कैलाश बाबू ने तपस्विनी के सिर मे सिन्दूर लगाकर सुहागिनी स्त्री की नाईं उसका अग्नि-संस्कार किया और घर पहुँचकर बड़े धूम-धाम से श्राद्ध-यज्ञ करके अपने को कृतकृत्य किया।

बाल विधवा की आत्म-कथा

मेरे इस तुच्छ जीवन पर अधिकार करने के लिये 'सोहाग' और 'वैधव्य' ने एक ही साथ दौड़ लगाई थी, पर मेरे पास पहुँचते-पहुँचते दोनों में ग्यारह मास की दूरी का अन्तर हो गया। सोहाग पहले पहुँचा और वैधव्य पीछे। किन्तु इस होड़ में बाज़ी मार ले जाने का श्रेय मैं सोहाग को नहीं दे सकती। समाज की कृपा से वैधव्य इतना द्रुतगामी हो गया है कि यदि वह चाहता तो ग्यारह दूने बाइस माह पहले मुझ तक पहुँच जाता। पर उसने देखा कि ऐसा करने से तर्कशास्त्र का गला घोटा जायगा। अतएव उसने दया करके अपना वेग कम कर दिया। यही कारण है कि पहले मेरा विवाह हुआ और तब मैं विधवा हुई!

मेरे विवाह-यज्ञ का अनुष्ठान शास्त्रानुकूल रीति से ही हो—

इस बात की अत्यधिक चिन्ता ने पिता जी को शास्त्रोक्त वचनों के तात्विक अर्थ निकालने की अद्भुत शक्ति दे दी थी। 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी'—सो मैं आठ वर्ष की थी ही। इसलिये कन्या की आयु के विषय में पिताजी निश्चिन्त थे। रह गया वर की आयु का प्रश्न। पिता जी ने बहुत सोच-विचारकर उपर्युक्त वचन से ही ऋषि का आशय निकाला। 'गौरी' शब्द सांकेतिक है। कन्या 'गौरी' हो, तो वर हो 'महादेव'! किन्तु खेद है कि देव-लोक तक पहुँच न होने के कारण पिताजी को कल्पों के वृद्ध शिवजी के स्थान में एक पचास वर्ष के बूढ़े जामाता से ही सन्तोष करना पड़ा।

विवाह के अवसर पर मैं खुश थी। द्वार पर बाजे बजते थे। शामियाने में नाच होता था। मैं गहनों से लदी हुई थी। मैं मन में कहती—वाह, विवाह भी कैसी अच्छी चीज़ है! अपनी उम्र की सहेलियों को मैं अपनी रेशमी साड़ी बड़े गर्व से दिखाती और अपने को उनसे अधिक भाग्यशाली समझती।

विवाह के केवल एक उपकरण से मैं सन्तुष्ट नहीं थी। यह मुझे मालूम था कि कन्या को विवाह में दुलहा मिलता है। साथ ही मेरा यह भी अनुमान था कि 'दुलहा' कोई छोटा सा लड़का ही हुआ करता है जिसके साथ कन्या अर्थात् दुलहिन को खेलने का अधिकार होता है। पर अपने सम्बन्ध में मेरा यह अनुमान ठीक नहीं निकला। मेरे दुल्लह जी लड़के नहीं थे—लड़के के बाप के बाप थे! सिर के बाल सफेद थे। हाँ, उनके प्रायः सभी दाँत चाँदी के थे, इसलिए गालों को सिकुड़ने का स्थान नहीं मिल रहा था। जब जब मुझे दुल्लह देव के साथ मण्डप में बैठने

को विवश होना पड़ता तब तब मैं उद्विग्न सी हो उठती। पर वह उद्विग्नता बहुत देर तक नहीं रहती। जब मैं गम्भीर होती तो बाल-बुद्धि मुझे समझा देती कि जहाँ मेरे विवाह के और २ उपादान जैसे बाजे-गाजे, नाच-रंग, खेल-तमाशा वस्त्र-आभूषण आदि आदर्श हैं, वहाँ 'दुल्हा' के विषय की त्रुटि केवल उपेक्षणीय है।

मैं सुनहले रंग के पर्देवाली डोली में चढ़कर ससुराल आई। पिताजी की मैं एक ही सन्तान थी। जब मैं पाँच वर्ष की थी तभी माता जी स्वर्ग सिधार चुकी थीं। परिवार में दो ही व्यक्ति थे—पिताजी और मैं। इसलिए घर से ससुराल को विदा होने के समय में अपने पड़ोस की बहनों, चाचियों और दादियों से मिल मिलकर रोई। पिताजी ने मुझे ढाढ़स देते हुए कहा—बेटी, अब तू इस कुटुम्ब के दारिद्र्य दुःख से मुक्त हो गई। तेरा भाग्य चमक गया। तू रो मत। सन्ध्या होते होते तू अपने को महल की रानी बनी पायगी। ईश्वर की कृपा है कि तू इस टूटी झोपड़ी से विदा हो रही है।

पिताजी के ये वचन मेरे स्मृतिपट पर अंकित हो गये। पर मैंने रोना बन्द नहीं किया। निर्दय कहारों ने मुझे जन्म की प्यारी भूमि से पृथक् कर दिया। कोई एक मील तक मैं रोती रही। पश्चात् थक जाने से सो गई।

ससुराल पहुँचने पर मैंने सचमुच अपने को महल की रानी के रूप में पाया। ऐसा विशाल भवन मैंने कभी नहीं देखा था। अन्तःपुर की लम्बाई, चौड़ाई, उनमे कोठरियो की संख्या, उनकी सजावट आदि सभी मेरी कल्पना को लज्जित कर रहे थे। मेरे पतिगृह में प्रवेश करते ही परिवार तथा पड़ोस की बालिकाएँ,

युवतियाँ तथा बूढ़ियाँ मुझे घेरकर बैठ गईं; किसी ने कहा—चाची आईं; किसी ने कहा—जेठानी आईं। पड़ोस की एक ही वृद्धा उनमे ऐसी थी जिसने दुलहिन शब्द के द्वारा मेरा सम्बोधन किया। उसी के चरण छूकर प्रणाम करना पड़ा। उसने बड़े प्यार से कहा—दुलहिन, मैं तेरी जेठानी हूँ। तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तेरा सोहाग अचल रहे।

किन्तु जेठानी जी के आशीर्वाद का फल उल्टा ही हुआ। दो तीन मास आनन्द से बीते। चौथे मास ससुराल के कुटुम्ब मे विषाद छा गया। मेरे पतिदेव कठिन शूलरोग से आक्रान्त हो गये। एक तो वृद्धावस्था, दूसरे अस्वस्थता—कमजोरी बढ़ती गई। उनकी चिकित्सा मे रुपया पानी की तरह बहाया गया। रोज़ नये नये डाक्टर आते और नई नई औषधों का प्रयोग होता। पर इन सभी प्रयासों का फल हुआ वही जो अधिकतर होता है। मेरे विवाह के ठीक ग्यारहवें मास मेरे स्वामी परलोक को चल बसे। परिवार मे हाहाकार मच गया। स्त्रियाँ मुझे बीच मे बिठला कर विधिपूर्वक रोईं। मै भी देखादेखी खूब रोई। मेरे सारे आभूषण उतार लिए गये, कङ्कण फोड़ डाले गये और स्नान कराकर सिन्दूर धो दिया गया। स्नान के बाद मुझे सफेद साड़ी पहना दी गई। यही और इतना ही मेरे सधवा और विधवा होने का इतिहास है।

विधवा होकर मै अपने सौतले बेटों, पोतो और नातियों के घर मे एक महीने से अधिक नही टिक सकी। मैने देखा कि स्त्री-समाज की ओर से बहुत शीघ्र मुझे चाण्डालिन, डाइन, अभागिन, पतिभक्षिणी आदि उपाधियाँ दी गईं। ये उपाधियाँ

मेरे ऊपर दिन-रात बरसती रहतीं। मैं कुटुम्ब के यशरूपी चन्द्र की कालिमा समझी जाने लगी। इस प्रकार के कुव्यवहार से घबराकर मैंने आँसुओं की शरण ली। मै रो-रोकर दिन काट रही थी कि एक दिन मुझे समाचार दिया गया कि मेरे पिताजी भी स्वर्गीय हो गये। इस बार भी स्त्रियों ने पहले ही की तरह मेरे साथ रोकर और मुझे अत्यधिक रुलाकर रोने की रीति निबाही। पर अन्त में सब ने एकमत से घोषणा की कि मैं अवश्य कुलच्छिणी हूँ क्योंकि विवाह होते ही मैं पति और पिता दोनों को खा बैठी।

पिताजी की मृत्यु क्यों और कैसे हुई; यह भी जान लीजिए। पिताजी ने मुझे सेंत में पतिदेव को नहीं दिया था। मेरे बदले में उन्हें मेरी तौल के बराबर चाँदी के सिक्के मिले थे। यह लेने-देन एक प्रकट रहस्य था। पिताजी उन सिक्कों को ज़मीन में गाड़कर उनका पहरा करने में ही सुख मानते हुए जीवन काट रहे थे। इसी बीच एक रात कुछ दुष्ट उनकी झोपड़ी में घुस पड़े। पिताजी ने जब रोक-टोक की तो दुष्टों ने उनके हाथ, पाँव, मुँह बाँध दिये और सिक्के लेकर चलते बने। सवेरे पड़ोसियो ने उनके बन्धन खोले पर वे पागल हो गए थे। उनके मुँह से दो ही शब्द निकलते थे—रुपया और चोर। मस्तिष्क की इसी बिगड़ी हालत मे वह एक दिन कुएँ में कूद पड़े। जब तक लोगों ने उन्हे निकाला तब तक उनका प्राणान्त हो चुका था।

विपत्ति अकेली नहीं आती। एक ओर पतिदेव का देहान्त, दूसरी ओर पिताजी का स्वर्गवास। इन विपत्तियों के रहते हुए तीसरा संकट आ खड़ा हुआ। पतिदेव के सगोत्रों ने जातीय पंचायत करके यह सिद्ध किया कि मेरे मायके का वंश शुद्ध

ब्राह्मण-वंश नहीं है। मेरे पिताजी के किसी पूर्वज ने कहारिन को रख लिया था। पंचायत की ओर से ससुरालवालों को नोटिस दिया गया कि या तो वे मेरा परित्याग करें या जाति से च्युत हों। जब मैंने घर की स्त्रियो को परस्पर यह बात-चीत करते हुए सुना कि मै कहारिन हूँ तो मारे क्रोध के मैं ख़ूब रोई। और कर ही क्या सकती थी? मैं अब समझती हूँ कि सगोत्रों ने यह फैसला केवल ससुरालवालों के ऐश्वर्य से ईर्ष्या रखने के कारण ही किया था। पारस्परिक ईर्ष्या परिवार, जाति तथा देश का सर्वनाश करके ही शान्त होती है। मेरे ससुराल के लोगों को दो वस्तुओ मे चुनाव करना पड़ा। ये दो वस्तुएँ थीं—जाति-सम्मान और मै। मेरा विश्वास है कि यदि मेरे पतिदेव जीवित होते तो जातीय पंचायत से मै कहारिन क्या चमारिन घोषित की जाने पर भी परित्यक्त नहीं होती। धन और बुद्धि ख़र्च करके दो पार्टियाँ बनाई जातीं और मै घर की रानी बनी रहती। पर आठ-नौ वर्ष की एक विधवा की परिवार अथवा समाज मे कुछ भी उपयोगिता नही है। वह तो अमङ्गल की मूर्ति, शोक की स्मृति और अपयश की पिटारी है। एक तो मै सौभाग्यहीना होने के कारण ही ससुरालवालो के सुख मे बाधक थी; दूसरे मेरा पितृकुल नीच प्रमाणित होने से उनका जाति-गौरव भी नष्ट होने लगा। ऐसी विषम अवस्था में मुझे परिवार में रखना केवल मूर्खता समझी गई। निदान एक दिन घर की कूड़ा करकट की नाईं मै बाहर फेक दी गई।

ससुरालवालो ने मुझे एक डोली मे बिठाकर मायके भेज दिया। मायके में मेरा अपना कोई नही था। बस पिता जी की

झोपड़ी जीर्णावस्था में खड़ी थी। मुझे कहारों ने वहीं पटक दिया। मुझे पहुँचाने के लिए एक प्यादा साथ कर दिया गया था। उसने निकटतम पड़ोसी के द्वार पर जाकर उच्च स्वर से कहा—भैरवनाथ की बिरादरी के जो कोई हों उन्हें मालिक के हुकुम से उनकी लड़की सौंपने आया हूँ। लड़की को आप लोग सँभालें।

इतना कहकर प्यादा कहारों के साथ वापिस हो गया। जिनके द्वार पर प्यादे ने घोषणा की थी वे मेरे चाचा होते हैं पर नाता पीढ़ियों की दूरी का है। उस समय वह उपस्थित नहीं थे, द्वार पर उनका एक बूढ़ा नौकर था जिसकी समझ मे ये बाते बिल्कुल नहीं आईं। उसने मुझे पहचाना और भीतर ले गया। कुछ ही देर में गाँव की बहुत सी स्त्रियाँ और पुरुष जमा हो गये। पश्चात् मेरे चाचा जी आये। ससुरालवाले मेरे ही कारण जातिच्युत कर दिये गये हैं यह समाचार कानोकान बहुत दूर तक फैल गया था। चाचाजी ने सारी घटना अनुमान के द्वारा समझकर लोगों को समझाया। रात्रि का समय था। मुझे उन्हीं के यहाँ भोजन और शय्या मिली। मेरे चित्त की क्या अवस्था थी यह कल्पना से ही गम्य हो सकती है, उसे व्यक्त करने की मुझमें शक्ति नहीं।

मेरे पिताजी की बिरादरी के बस तीन कुटुम्ब गाँव में हैं। पर इन कुटुम्बों तथा मेरे पिताजी के परिवार के बीच कई पीढ़ियों का व्यवधान है। गाँव के और और निवासी छोटी-छोटी जाति के हैं जैसे कहार, धीवर आदि। पिताजी की बिरादरी के लोग भी उन्हीं के जैसे दरिद्र हैं और देश की पराधीनता में दरिद्रता

का असमर्थता और मूढ़ता से घोर सम्बन्ध रहता है। यदि मेरे ये चाचा आदि चाहते तो मेरी ओर से ससुरालवालों पर नालिश दायर कर सकते थे, मुझे निर्वाह के योग्य वृत्ति दिलवा सकते थे। पर सब के सब अशिक्षित देहाती थे। एक बड़ी हैसियत के ज़मींदार के विरुद्ध मुकदमा चलाना इनके कल्पना-जगत् के बाहर की वस्तु था। तीनो कुटुम्ब बस इसी बात के लिए झगड़ने लगे कि मेरा पोषण कौन करे। कोई पन्द्रह दिनों तक मैं तीनो कुटुम्बों के यहाँ बारी के अनुसार पत्तल पाती रही। पश्चात् मुझसे सभी ऊब गये! निदान उदर-देवता के वशीभूत होकर मैंने उस जाति की शरण ली जिसे द्विज-समाज शूद्र और नीच कहता है। मेरे इस आचरण का फल यह हुआ कि मैं मायके की बिरादरी से भी बहिष्कृत कर दी गई। इने-गिने उपर्युक्त तीन कुटुम्बो ने फ़ैसला दे दिया कि मैं अब पतित हो गई।

मेरी इस दुरवस्था को देखकर गाँव की एक बुढ़िया ने, जो जाति की चमारिन थी, एक दिन मुझसे कहा—बेटी, चल, तुझे तेरी मा की फुफेरी बहन के यहाँ पहुँचा दूँ। तेरा अपना अब वही है। मैं चुपचाप उसके साथ हो ली। मार्ग में बुढ़िया लाठी के बल चलती हुई मुझे ढाढ़स देती जाती थी—बेटी, घबरा मत। हम लोग पाँच कोस का सफ़र तय कर चुकी होंगी जब कि मैंने उस भली बुढ़िया को लड़खड़ाती हुई देखा। बुढ़िया ने कहा—बेटी, मैं थक गई, प्यास से मर जाऊँगी। महीना जेठ का था, सूरज भगवान ठीक माथे पर थे। बुढ़िया भ्रान्त होकर सड़क के किनारे बैठ गई, फिर लेट गई। अनन्तर ज़ोर से साँस

लेने लगी। मैं रोने लगी। इसी समय दो राही उधर से निकले। उन्होंने पानी देकर उसके प्राण बचाये और यह कहकर कि वे उसी गाँव के हैं जिसमें मेरी मौसी थी मुझे अपने साथ ले लिया और बुढ़िया को लौटा दिया।

जब मै घर से निकाल दी गई तब जातीय पंचायत ने ससुरालवालों के सिर से जातिच्युति का दण्ड हटा लिया। ऐश्वर्य के मदान्ध मेरे सौतेले पुत्र, जो अब घर के स्वामी थे, मेरी ओर से एकदम निश्चिन्त हो गये। कभी खोज ख़बर लेने की कृपा नहीं की। उनके जीवन का शेष भाग—जो पाँच वर्ष से अधिक का नहीं था—इन्द्रिय-सुख-भोग मे ही बीता। उनके अनुग्रह के प्रताप से वेश्याओ ने अट्टालिकाएँ बनवाईं। ख़ुशामदी मुसाहबो ने ज़मीदारियाँ खरीदी। पर विलासिता की नदी मे कोई सुदीर्घ काल तक जल-क्रीड़ा नहीं कर सकता। निदान एक दिन इस विषय-भँवर ने डुबोकर उनके प्राण ले लिए।

अब उनके पुत्र ज़मीदारी की गद्दी पर बैठे। उस समय इनकी आयु १६ वर्ष की थी। इन्होने थोड़े ही दिनों में संसार को दिखला दिया कि कलियुग में ब्राह्मणो को कुल-मर्यादा का पालन किस प्रकार करना चाहिए। दादा से दो गुने और पिता से पाँच गुने उत्साह के साथ इन्होने विषय-भोग और लक्ष्मी के साथ वीभत्स होली खेलनी शुरू कर दी। इनके इस उत्साह के लिए देश की दुरवस्था भी कुछ अंश में दोषी समझी जा सकती है। 'क़ानून के विधान' से ही मेरे पोते साहब को ऐसे कुचरित्र होने पर भी अपने ससुराल की बड़ी जमीदारी भी हाथ लग गई क्योंकि वहाँ भी कोई उत्तराधिकारी न था। एक तो

पैतृक सम्पत्ति थी ही; दूसरे ससुराल की आय ऊपर से हुई। पौत्रजी का उत्साह बढ़े न तो क्या हो ? 'एक तो मियाँ बावरे, दूजे पीनी भंग'। पौत्रजी छोटे-मोटे शहरों की वेश्याओ का नृत्य कराने मे अपनी मान-हानि समझने लगे। कलकत्ता, इलाहाबाद, बनारस आदि नगरो की प्रसिद्ध वाराङ्गनायें इनके महफिल की शोभा बढ़ाती थ। ये देहात मे कठिनता से आते थे—प्रत्येक बड़े शहर मे जाकर डेरा डालना, वहाँ दो चार महीने रहकर रूप के बाज़ार के एक एक सौदे का मोल करना–यही इनका काम था। अपने इसी नियम के अनुसार आप बनारस मे सौदा कर रहे थे। आपकी ज़मीदारी-काल का यह सातवाँ वर्ष था। आपकी आयु २३ की थी। आप बनारस का सौदा पूरा कर नहीं पाये थे कि इसी बीच आपको यारो ने लखनऊ की जुहीजान के रूप-गुण के वर्णन से विह्वल कर दिया। आपका कैम्प दूसरे ही दिन लखनऊ की शोभा बढ़ाने लगा।

लखनऊ का यह दृश्य देखिए। पौत्र जी महफिल के मध्य स्थान पर मसनद के सहारे बैठे थे। उनके दोनो ओर उनके यार-दोस्तों के आसन जमे थे। कोठी का कमरा बड़ी खूबी से सजा हुआ था। बिजली की बत्तियो से रात दिन का मुक़ाबला करना चाहती थी। सारा कमरा दर्शको से ठसाठस भरा था। सभी जुहीजान की प्रतीक्षा मे विकल थे। कोई आध घंटे के बाद जुहीजान अपने समाजियो के साथ कमरे में दाख़िल हुई। उसने तथा उसके समाजियों ने बड़े अदब से झुककर मेरे पौत्रजी को सलाम किया और निश्चित स्थान पर बैठ गये। दर्शक लोग जुहीजान के मुख-सौन्दर्य को एकटक निहारते हुए आश्चर्य,

विस्मय और वैकल्य के मिश्रित भाव व्यक्त करने लगे। उसकी नृत्यकला तथा गान-विद्या से तृप्त होने की प्रबल इच्छा से अधीर होकर मेरे पौत्रजी ने कहा—बाई जी, अब देर क्या है ? मुजरा शुरू हो। जुहीजान ने झट झुककर सलाम किया और उठकर खड़ी हो गई। समाजी भी खड़े हो गये और अपने साज को सँभालने लगे। इसी बीच पौत्र जी के एक मुसाहब ने कहा—बाई जी, हम लोग बहुत दूर से आपकी प्रशंसा सुनकर आये हैं।

जुहीजान ने झुककर सलाम किया।

दूसरा मुसाहब—आपके रूप के बारे में जितना सुना था उससे कहीं अधिक परमात्मा ने आपको दिया है।

जुहीजान ने झुककर फिर सलाम किया और मुसकिरा कर लज्जा का भाव दिखलाया।

तीसरा मुसाहब—बाईजी, इस महफिल के मालिक चन्द्रनाथ जी रईस हैं। वे रूप और गुण का अत्यधिक सम्मान करते हैं।

जुहीजान ने कृतज्ञता का भाव दिखलाते हुए झुककर मेरे पौत्र को सलाम किया।

चौथा मुसाहब—बाईजी, बाबू साहब के ख़ानदान को ही इस बात का अभिमान है। इनके पूर्वजों के हाथ से भी वेश्याएँ निहाल हुई हैं। आपने 'कृष्णपुर' स्टेट का नाम सुना होगा। बाबू साहब के स्वर्गीय पिताजी ने ख़जाने के रुपयों को रूप की चाह में पानी की तरह बहाया था। बाबू साहब के दादा साहब लोकनाथजी ने मृत्यु की घड़ी तक प्रेम की पूजा की थी। पर हमारे वर्त्तमान बाबू साहब का हौसला पिता, पितामह से कई गुना अधिक है। आज आप अपनी सर्वोत्तम कला का नमूना
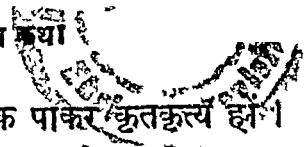
दिखलावें और इनके हाथ से परितोषिक पाकर कृतकृत्य हों।

जुहीजान ने घबराई सी होकर मेरे पौत्र जी को सलाम किया, फिर अधिक व्याकुलता का भाव दिखलाकर थरथर काँपने लगी। अनन्तर बायें हाथ के कङ्कण को बाहर फेंककर इतनी विकलता से कलाई को पकड़कर देखने लगी कि लोगो को भान हुआ कि किसी ज़हरीले कीड़े ने डंक मारा है। सारी महफिल अशान्त हो गई। जुहीजान देखते-देखते भूमि पर बेहोश होकर गिर पड़ी।

मूर्च्छित जुहीजान को होश में लाने के लिए चन्द्रनाथ स्वयं दौड़ पड़े। उसके मुँह पर गुलाब का जल छिड़का जाने लगा। मुसाहब लोग रुमाल से हवा करने लगे। मेरे पौत्रजी उसकी बाईं कलाई को जो दूसरे हाथ से जकड़ी हुई थी बड़े ध्यान से इस अभिप्राय से देखने लगे कि कहीं किसी बिच्छू का डंक तो नहीं है। उसकी कलाई पर बिच्छू के डंक का चिह्न तो नही मिला पर बिच्छू का आकार अवश्य गुदा हुआ मिला। उन्होंने बड़ी स्थिरता से उसे देखा तो वह आकार कई टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से बना हुआ मिला। उन अक्षरो को जोड़कर उन्होने स्पष्ट स्वर मे पढ़ा—श्रीमती लोकनाथजी, कृष्णपुर स्टेट। पाठक, जुहीजान मैं ही थी।

सुशीला देवी से जुहीजान मैं कैसे हुई और जुहीजान होकर अपने पौत्र की महफिल मे क्यों गई? इन रहस्यो को भी स्पष्ट किये देती हूँ। स्मरण कीजिये कितने वर्ष पहले मै एक दिन अपने गाँव की एक भली बुढ़िया के मृतवत् शरीर के पास रो रही थी। फिर मैंने अपने को दो अपरिचित व्यक्तियों के निरीक्षण में

पाया। ये दोनों व्यक्ति कोई परोपकारी जीव नहीं थे। ये उन नर-राक्षसों मे से थे जो समाज की दुरवस्था से अनुचित लाभ उठाते है। उन्होने तरह तरह के प्रलोभनो में डालकर मुझे अपनी पालतू चिड़िया बनाना चाहा। बनावटी स्नेह के बर्ताव, रंग-विरंगे कपड़ों, तरह तरह की मिठाइयों तथा रेल की यात्रा के नये नये दृश्यों में मुझे बिल्कुल भुला देना चाहा। यात्रा के तीसरे दिन हम लोग लखनऊ पहुँच गये। मैं वहाँ की तत्कालीन प्रसिद्ध वेश्या कुन्दनजान के हाथ बेच डाली गई। कुन्दनजान ने मुझे क्यो खरीदा, मुझे कैसी शिक्षा दी, इन सब बातो का अनुमान आप सहज ही में कर सकते हैं। उन्हें लिखकर इन पृष्ठों को अपवित्र करने से कुछ लाभ नहीं। पर कुन्दनजान और अन्य पतित लोगो को भी मुझे अपमानित करने का दुस्साहस कभी न हुआ। अपनी कलाई पर अंकित अक्षर, जो मेरे ससुराल पहुँचते ही गोदे गये थे, मुझे अपनी कुलीनता का स्मरण दिखाते थे। मै उन्हें कङ्कण से बराबर छिपाये रहती थी। पर उन्हे देखकर गहरी साँसे लेती थी। वे मेरे रक्षक थे। मेरे पड़ोस मे सब वेश्याएँ न थीं। यह सच है कि जो वेश्याएँ न थीं वे हमसे घृणा करती थीं पर एकाध बूढ़ी स्त्री को हम पर दया भी आती थी। एक ऐसी ही स्त्री ने मुझे भी पतितावस्था से बचने मे बहुत सहायता दी थी। इस मकान से निकल कर उसके साथ बाहर भागने के लिए मै तिथि भी निश्चित कर चुकी थी, इसी बीच यह घटना हुई।

इस घटना ने मेरे पौत्र की आँखें खोल दी। अपना सब क़र्ज़ पटाकर उन्होंने शेष स्टेट शुभ कार्य्यों के लिए समर्पित कर

दिया और स्वयं अपनी स्त्री के साथ एक साधारण गृह में रहकर संयम और साधना द्वारा पापों का प्रायश्चित्त करने लगे।

मैंने उनकी कृपा से लाभ उठाने से साफ़ इन्कार कर दिया। मै रोज़ बारह घण्टे चर्खा कातती हूँ। इससे मुझे खाने पहरने का तनिक भी कष्ट नहीं होता। कुछ धर्म-ग्रन्थ भी मैंने मँगा लिए है। मेरे पौत्र की स्त्री एक दिन मेरे पास आई और मेरे पॉव पर गिर पड़ी। मुझे जान पड़ा, मै स्वर्ग में पहुँच गई हूँ।

उसने कहा—माँ, तुमने हम दोनो को उबार लिया!

शक्तिपूजा

[१]

प्रबल-प्रवाहा भीमा नदी के तट पर स्थित विशाल देवी-मन्दिर की गगन-चुम्बी चूड़ा पर लाल ध्वजा फहराने लगी। सारे नगर की प्रजा सावधान हो गई। राजा की कठोर आज्ञा थी—"जगन्माता की शारदीय पूजा के अवसर पर जो द्रव्य और पशु के रूप में निर्द्धारित कर नहीं उपस्थित करेगा वह कुत्तों से नुचवा दिया जायगा।"

देखते देखते राजकीय कोषालय में रजत और स्वर्ण मुद्राओं का स्तूप बन गया, और, देवी-मन्दिर के निकटवर्त्ती सुविस्तृत क्षेत्र में अजा-पुत्रों का ऐसा मेला लगा जैसा मेला कदाचित् प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर साधुओं का भी न लगता होगा। शक्ति के उग्र उपासक राजा के प्रलयकारी भ्रूभंग से त्राण पाने

के लिये प्रजा ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। कर चुकाने में तनिक भी कोर-कसर न की। प्राणों से बढ़कर धन का मोल नहीं होता।

[२]

नवरात्रि का शुभागमन होते ही देवी की प्रतिमा के सम्मुख पशुओं की बलिदान-क्रिया का श्रीगणेश हुआ। प्रति दिन सहस्रों पशुओं की बलि दी जाने लगी। बलि-वेदिका से दुर्बल मूक प्राणियों के निर्दोष रक्त की जो धारा बह निकली उसने भीमा नदी के प्रवाह मे मिल कर उसकी भयङ्करता को और भी भयङ्कर बना डाला।

पण्डित, पुरोहितों ने राजा को विश्वास दिलाया—"पृथ्वी-नाथ, इस वार भगवती हमारी पूजा से परितुष्ट हैं। आप सोत्साह आक्रमण की तैयारी करें, विजय अवश्यम्भावी है!"

राजा ने कमलाक्षमाला से मण्डित मस्तक को हिलाकर मतैक्य-सूचक भाव से कहा—'हूँ।'

[३]

कलश-स्थापन की तिथि से लेकर सात दिनों तक देवी की पूजा निर्विघ्न रूप से होती रही। आज अष्टमी है। राजा ने राज-कर्मचारियो तथा पुरोहितो को सावधान करके कहा—"आज की रात्रि अष्टमी की रात्रि है। अतएव बलि-प्रदान की क्रिया में विराम को स्थान नहीं मिलना चाहिये। हम जितनी ही श्रद्धा से माता को सेवा पहुँचायँगे, वह भी उतनी ही तत्परता से हमारी मनोकामना पूर्ण करेगी।"

पुरोहितगण आशीर्वादपूर्वक बोले—'श्रीमान् का प्रस्ताव स्तुत्य है।'

राज कर्म्मचारियों ने नतमस्तक हो कर उत्तर दिया—'जो आज्ञा।'

[४]

जगज्जननी के पवित्र नाम पर असंख्य जीवों की हत्या होते देख कर राजकन्या का हृदय अशान्त हो उठा। वह घोर तर्क-वितर्क के बाद वह एक निश्चय पर पहुँची। राजा के सम्मुख उपस्थित हो उन्हें सादर प्रणाम करती हुई बोली—"पिताजी, मेरी मन्द बुद्धि के अनुसार शक्ति-पूजा की यह विधि अत्यन्त कठोर और अमङ्गलकारी है। आप दया-दाक्षिण्य का व्रत लेवें। हिंसा से शक्ति का सञ्चय नहीं, ह्रास होता है।"

राजा क्रोध से क्षुब्ध हो उठे। अपने जीवन भर में उन्होंने अपने कानों से आज ही बलिप्रदान की निन्दा सुनी थी।

आग्नेय नेत्रों से राज-कन्या को देखते हुए बोले—"सावधान, फिर ऐसे शब्द मुख से न निकालना। यदि आज तू मेरी पुत्री न होती तो अभी तेरा मस्तक धड़ से वियुक्त होकर पृथ्वी पर लोटता। धर्म के निगूढ़ तत्त्व को तू एक छोटी-सी बालिका नहीं समझ सकती। जा, अभी अन्तःपुर को चली जा।"

राजकुमारी ने तत्क्षण राजाज्ञा का पालन किया।

[५]

परमेश्वरी की भक्ति के मिस यह अन्याय! स्वार्थ को परमार्थ का आवरण देकर सत्य की ऐसी घृणित हत्या!!

पशुबल-विस्तार के एक मात्र नीच उद्देश्य से अपनी प्रजा पर भाँति भाँति के कर का भार डालते जाना, अपर राजाओं के सुशासित राज्यों पर अकारण आक्रमण करते रहना, फिर ऐसे जघन्य व्यापार में कृतकार्य्य होने की कामना से प्रेरित होकर अधिकाधिक उत्तेजना से निरीह पशुओ का रुधिर बहाते जाना, और सो भी निखिल विश्व की जननी के क्रोड़ मे—क्या क्षात्र-धर्म-इसी को कहते हैं ? शिव ! शिव !!

राज-कन्या ने आकाश की ओर मुँह किया और दोनो भुजाओ को ऊपर उठाकर आकुल कण्ठ से प्रार्थना की—"हे सर्वमङ्गलमांगल्ये, शक्ति-स्वरूपे देवि, पिताजी के अज्ञानान्धकार को दूर कर उन्हे ज्ञान-ज्योति प्रदान करो। मुझे इतना आत्मबल दो कि मै इस घोर पैशाचिक अत्याचार का निराकरण करने में निमित्त होऊँ।"

[६]

अष्टमी की रात्रि अपनी भयानक मूर्ति लेकर आ पहुँची। यथा-समय बलिदान-कर्म्म प्रारम्भ हुआ। आज देवी-मन्दिर की ओर जन-समुद्र उमड़ पड़ा। राजा देवी के सिंहासन के नीचे कुशासन पर बैठे आराधना में लीन थे। उनका रक्त-चन्दन-चर्चित भाल दीप के उज्ज्वल प्रकाश मे चमक रहा था। एक भीमकाय प्रचण्ड वीर खड्गहस्त होकर बलिवेदिका के निकट खड़ा था और अजा-पुत्रो के सिर धड़ से धड़ाधड़ पृथक् कर रहा था। उसका सारा शरीर रुधिर से लथपथ था उसे देखकर स्वयं काल का हृदय काँप रहा था। किस क्षण उसके हाथ से खड्ग उठता और किस क्षण उसकी चोट से बलिपशु का शिरश्छेद हो

जाता था यह ठीक ठीक बतलाना दर्शकों के लिये कठिन था। निरंतर खड्ग-प्रहार, जय दुर्गे और बकरों के 'मे मे' के शब्द से आकाश प्रतिध्वनित हो रहा था।

देखते देखते पशुओ के रुण्डमुण्डों का पहाड़ बन गया पर बलिप्रदान जारी रहा।

घोर निशाकाल पहुँचा। दुर्गाशप्तशती का पाठ करनेवाले पुजारियों का स्वर प्लुत से दीर्घ प्लुत हो गया। बलिपशुओ को काटनेवाले योद्धा ने प्रहार के वेग को और भी तीव्र कर दिया। आँखें मूँद कर वह वेदिका पर बारी बारी खड़ा किये जाने वाले पशुओं को इतनी शीघ्रता से काट गिराने लगा कि उसके हस्त-लाघव को देखकर सभी विस्मित हो उठे। भक्तों ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा—'यह सब देवी की कृपा का फल है।'

पूजा की यह घड़ी भक्ति के आवेग की घड़ी थी। मन्दिर उपस्थित सारा जन-समाज उत्तेजित था। निदान इसी समय लोगों को प्रतीत हुआ कि भीड़ को चीरती हुई एक बिजली सी निकल गई।

जबतक इस आकस्मिक अद्भुत घटना का अर्थ भी उनकी समझ में नहीं आया तब तक वेदिका के ऊपर उठे हुए खड्ग और वेदिका पर खड़े छाग के बीच शून्य आकाश में एक अनवद्याङ्गी मानवी का मस्तक आ पड़ा और निमिषमात्र में धड़ से वियुक्त होकर भूलुठित हो गया। एक ओर मुण्ड लोट रहा था, दूसरी ओर रुण्ड तड़फड़ा रहा था। किसका? राजकन्या का।

दर्शकों मे कोलाहल मच गया। सभी घबरा कर चिल्लाने लगे—"अनर्थ हो गया। राजकुमारी स्वयं बलि हो गई। हाय!"

राजा का ध्यान भंग हुआ। वेदिका पर दो खंडों मे विभक्त अपनी एकमात्र सन्तान का मृतक शरीर देखकर वे शोक से विकल हो उठे। रानियो के करुण विलाप से मन्दिर का पत्थर का कलेजा पिघल गया। राजकुमारी के आत्म-बलिदान का समाचार चारो ओर फैल गया। सर्वत्र विषाद छा गया। राजा शोकभार को सँभाल न सके, मूर्छित हो गये। मूर्च्छा टूटने पर बहुत देर तक क्रन्दन करते रहे। अनन्तर अर्द्ध निद्रा को प्राप्त हुये। अर्द्ध-निद्रित दशा में उन्होंने देखा—राजकुमारी स्वर्ण-रथ पर आरूढ़ होकर आकाश-मार्ग से धावित हो रही है। उसका मुख प्रसन्न है, आत्मा सन्तुष्ट। वह इस समय भी कह रही है—पिताजी, शक्ति-पूजा की यह विधि अत्यन्त कठोर और अमंगलकारी है। आप दया-दाक्षिण्य का व्रत लेवें। हिंसा से शक्ति का सञ्चय नहीं ह्रास होता है।

कहते हैं राजकन्या के इस अनुपम त्याग से राजा के सिद्धान्तो में महान् परिवर्त्तन हो गया। उन्होने सरल और सात्विक मार्ग का अवलम्बन कर प्रजा के भरण-पोषण में मन लगाया और अपने शेष जीवन में हिंसा से विमुख रहे।

---

(१) बेगार

सोनू गहरी चिन्ता में डूबा हुआ था। इस खोटे जुग में धरम नाम को नहीं रह गया। राजा और परजा में बाप और बेटे का भाव रहना चाहिये, मगर आज उनके बीच बरताव है कसाई और गऊ का। सारी उम्र बेगार पूरी करते बीत गई, सुख सपने में भी देखने को नहीं मिला। कट्ठा भर धरती एक झोंपड़ी के लिये मिली हुई है, बस इसी एक उपकार के लिये जवानी से लेकर आज तक एक कन्धे से पालकी में जुता रहना पड़ा है और सो भी मजदूरी की चर्चा तक से दूर रहकर। केवल हुकुम बजाने के लिये आँधी-पानी, सरदी-गरमी, रात-दिन किसी की कुछ परवा न करके कितनी बार जान हथेली पर रख कर खेल गया हूँ इसको याद आते ही कलेजा दहल जाता है। पर आज का जैसा कठोर अवसर कभी सामने नहीं आया था।

भगवान, मेरे बच्चे को बचाओ—इस अभागे बूढ़े की इस एक ही लकड़ी को टूट न जाने दो। रामू मेरी आँखों का उजाला है, वह मेरी गरीबी का अनमोल धन है। उसको बीमारी की ऐसी दशा में छोड़कर बेगार मे जाने को जी नहीं चाहता। मगर दूसरा कोई चारा नहीं है। हुकुम टालने में तो और भी संकट है। वह तो रामू की मौत को कल के बदले आज ही बुलाने के बराबर है! झोपड़ी उजाड़ कर फेंक दी जायगी, पचास जूते पीठ पर पड़ेंगे और बारात के बिदा हो जाने पर अँगूठे के निशान पर नालिश ठोकी जायगी—बेगार में न जाऊँ तो इतनी बातों के लिये तैयार रहने की चेतावनी दी गई है। इस घोर वर्षा में एक महीने के बीमार रामू को लिये कहाँ भटकता फिरूँगा—इस गाँव में तो डर के मारे कोई ओलती को भी शरण नहीं देगा। फिर वैसी हालत में मेरे लाल की क्या गति होगी? तो क्या रामू की सेवा का सारा भार अकेली रामू की माँ पर छोड़ कर बेगार में जाऊँ? जाऊँ, कैसा—जाना तो पड़ेगा। परमेश्वर, दया करो—दया करो, जिससे लौट कर आऊँ तो रामू का कोमल मुख देखने को मिले। अथवा वह बहुत बड़ी भीख हो तो मुझे राह में ही जीवन से छुट्टी दे देना। यह मूसलधार वर्षा, कन्धे पर पालकी रखे स्टेशन तक की कोसों की लम्बी सफर, गरीबी की चोटों से चूर चौथेपन की ढीली हड्डी, बेटे जैसे धन के जीवन की निराशा—दयामय, तुम्हें मेरी मौत के लिये विशेष प्रबन्ध नहीं करना पड़ेगा। पहली भीख न दे सको तो दूसरी अवश्य देना। इतना सोचते सोचते सोनू अत्यन्त विकल हो उठा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा वह निकली। पर किसी

तरह आँसुओं को रोक कर वह झोपड़ी के भीतर गया। उसके पैरों की आहट पाकर रामू की मा जो अब तक रामू को गरम रखने के लिये उसके तन को थामे आप ऊपर से चटाई ओढ़े सिर नीचा किये बैठी थी, चौंक पड़ी और सोनू से पूछा—'क्या मालिक ने नहीं माना ?' सोनू ने काँपते हुए स्वर मे उत्तर दिया—'नही, जाना जरूरी है।' रामू की मा यह सुनते ही बेतरह अधीर हो गई। वह छाती पीटने लगी। सोनू ने उसको समझाना आवश्यक समझकर किसी तरह कलेजे को मजबूत करते हुए कहा—भगवान् की मर्जी होगी तो तेरा बेटा मौत के मुँह से भी निकल कर आ जायगा। भगवान् से ही हाथ जोड़ कर विनय कर, उन्ही के उबारे उबरेंगे। मैं तो जा ही रहा हूँ, तुझसे बच्चे की जो सेवा बन सके, करना। फल तो देनेवाला वही परमात्मा है। इतना कहकर सोनू ने रामू के सारे शरीर पर एक बार हाथ फेरा, उसके सिर को, जो कपड़े से ढँका था, कई बार चूमा, हाथ जोड़ ऊपर की ओर मुँह करके दो तीन मिनट तक कुछ प्रार्थना की, फिर चलने की तैयारी करने लगा। उसने एक मैली धोती कन्धे पर रखी, कम्बल की घोघी बनाई, दायें हाथ में लाठी थामी, बायें में लोटा। निराशा के साहस से प्रेरित होकर सोनू ने डेग उठाई और झोपड़ी के द्वार को खोल मालिक के पक्के मकान की तरफ चला। उस समय उसकी आँखों में आँसू की एक भी बूँद नही थी। पानी जोर से बरस रहा था। तो भी रामू की मा कुछ दूर तक उसके पीछे पीछे आई, पर जब सोनू ने लौटकर देखा भी नहीं तब निराश होकर झोपड़ी को वापस चली आई। रामू अभी तक सोया ही था।

"यह आ गया सरकार" कह कर दङ्गल सिंह ने छाता मोड़ते हुए बरामदे मे प्रवेश किया।

बाबू साहब ने त्योरी बदल कर पूछा—क्यों रे, तुझे कुछ डर भी है कि नहीं ? तेरी प्रतीक्षा मे सभी कहार एक घण्टे से खड़े है, पालकियाँ कब रवाना होगी। परसों बारह बजे की गाड़ी से बारात के लोग उतरेंगे ? उस समय तुम लोगो को सवारियो के साथ वहाँ हाजिर रहना होगा।

सोनू ने अत्यन्त करुणा से निवेदन किया—सरकार, रामू का अब कम भरोसा है। उसको छोड़कर जाते छाती फटती है। अकेली बुढ़िया से वह न सँभलेगा। वह आने नहीं देती थी। सरकार मा-बाप हैं, इस बार छुट्टी........।

बाबू साहब ने बीच ही मे बात काटकर कहा—फिर वही बहाना पेश करता है ? जभी कोई ज़रूरत पड़ती है, तभी इन लोगों के यहाँ कोई न कोई मरने लगता है। तू न जायगा तो काम कैसे चलेगा ? क्या मै कहार गढ़ा करता हूँ कि एक घट जाय तो झट दूसरा तैयार कर दूँ ?

मुंशी कुलदीप लाल, जो अभी तक चुप थे, गम्भीरता से बोले—"बाबू साहब, वे लोग बहुत बड़े आदमी हैं। पानी बेतरह बरस रहा है; आराम से न पहुँचे तो आपकी योजना में पूरा सन्देह करेंगे। आपकी प्रतिष्ठा मे बट्टा लग जायगा।" इस समयोचित उपदेश को सुनकर बाबू साहब कुछ और सतर्क हो गये। फिर पूरे सँभल कर मसनद के सहारे बैठे और कहारों को सावधान करते हुए बोले—देखना, उन लोगों को राह में तनिक भी कष्ट न होने पावे। ज़रा भी शिकायत सुनने में आयी

तो तुम लोगों की खाल खिचवा लूँगा। शादी-व्याह का मामला है, कुछ मामूली काम नहीं है।

जोखू ने बहुत साहस करके धीरे से अर्ज़ किया—सरकार, पानी तो निकलता ही नहीं। यदि शरीर से लाचार होकर समय पर न पहुँच सके तो हमलोगों का क्या अपराध? राह में घाट-बाट का बखेड़ा अलग है।

बाबू साहब बिलकुल बिगड़ उठे—बहुत बकवाद मत करो। बड़े सुकुमार बने हो तो तुम सब के सब हमारी जगह छोड़ कर जहाँ जी चाहे चले जाओ। हम उस ज़मीन में सरसो की खेती करायँगे।

मुंशी कुलदीपलाल फिर गम्भीर भाव से बोले—मैं तो सरकार से पहले ही से कहता आ रहा हूँ कि जितनी जमीन मे ये लोग बसे हैं, उतनी में सरसों की खेती हो तो दूना लाभ हो। सरकार जितनी मरौवत करते हैं, ये उतने ही अकड़ते जाते हैं।

खड्गसिंह प्यादे ने मुंशीजी को सम्बोधन करके कहा—दीवान जी, छोटी जात के हैं न, बिना पिटाई के सीधे न होंगे। लात-घूँसों के यार हैं; चुमकार कर इनसे काम लेने की आशा व्यर्थ है। दङ्गलसिंह प्यादे ने कहा—मुझे तो प्यादागिरी करते बीसों वर्ष हो गये; इन लोगों को मारते-मारते मैं थक गया; पर इन लोगों ने बहाने पेश करने की बान न छोड़ी। जनम के तो हैं कहार, मगर आराम चाहिये महल का।

जोखू कुछ उत्तर न दे सका। बाबू साहब ने दोनों प्यादों से कहा—तुम दोनों इन कहारो के साथ जाओ। इन पालकियों में से एक समधी साहब के लिये है और दूसरी चक्रपुर के रईस

बाबू धर्मपालसिंहजी के लिये। लड़के के लिये तामदान और बाकी लोगों के लिये हाथी-घोड़े आदि पहले ही भेज दिये गये हैं। दङ्गलसिंह और खड्गसिंह ने सलाम करके छाते ताने। कहारों ने पालकियाँ उठायीं। सब के सब चल पड़े। पानी झम-झम बरस रहा था। सोनू भी एक पालकी को कन्धे से लगाये जा रहा था। पालकी उठाते समय उसने मन-ही-मन कहा—परमात्मन्, पहली भीख न दे सको तो दूसरी अवश्य देना।

(२)

सवेरे कोई आठ बजे सोनू ने गाँव छोड़ा होगा। पानी तो उस समय बरस ही रहा था, सन्ध्या होते होते प्रलय की वर्षा होने लगी। मालूम होता था आकाश फट पड़ा है और आज बिलकुल बरस कर ही दम लेगा। बीच बीच में बिजली की तड़तड़ाहट से प्राण सूखे जाते थे। इस समय सोनू की झोपड़ी मे रामू की मा विह्वलता की साक्षात् मूर्त्ति हो रही थी। रामू को जोर से कराहते देखकर उसका धीरज छूट गया। वह रामू के सिर को गोद मे लिये विलाप कर रही थी—हा दैव, तुझसे यह भी नही देखा गया! तूने एक एक करके मेरे तीन लाल छीन लिये, फिर भी तेरा जी नहीं भरा! एक ही बच्चा रह गया है, इसको तो छोड़ दे। तेरे पैरों पड़ती हूँ, रामू की रोग-बला मुझको दे दे, मेरे बच्चे की जान बकस दे। तेरे हाथ में सब कुछ है। इतना कठोर न हो जा। दुखिया की आह सुन। रामू मेरे जीवन का सहारा है। इसके बिना मेरे लिये सारा संसार सूना है। इसको चङ्गा करके खड़ा कर दे और इसके बदले मुझे ही मौत दे दे। शोक पर शोक न दे। बच्चे को प्यार करने का हौसला

बँधा ही था कि तूने लल्लू को मेरी गोद से उठा लिया। उसके नन्हें-नन्हें हाथों की याद आते ही प्राण विकल हो जाते हैं। पूरन और कल्लू फूट कर जवान हो चले थे। आशा बँध चुकी थी कि इनकी कमाई से हम दोनों बुढ़ापे मे सुख करेंगे। पर तेरी निठुरता से दोनों एक ही रात हैजे के शिकार हो गये। फिर भी हम दोनो जीते ही रहे। धिक्कार है इस जीने को! तब सारी आशा, सारा भरोसा रामू पर रखकर साँस लेते रहे। उस समय रामू सात ही वर्ष का था। अभी इसका पन्द्रहवाँ वर्ष भी पूरा नहीं हुआ है। इसने दुनियाँ में क्या देखा, क्या सुना? फिर इसके आगे इसकी बूढ़ी मा को मौत न देकर इसके साथ ऐसा अन्याय क्यो कर रहा है? रामू की माँ इसी भाँति विलाप में मग्न थी कि उसके पड़ोस की दो तीन कहारिनें, जो सोनू की बिरादरी की थीं, भीगती भागती रामू को देखने आईं। रामू की माँ की कातरता देखकर इन तीनों के हृदय पिघल गये। आँखो में आँसू भरकर तीनो उसे ढाढ़स देने लगीं। एक ने कहा—रो रो कर बच्चे की बीमारी न बढ़ाओ। भगवान् पर भरोसा करके सेवा करती जाओ। दूसरी ने कहा—हाँ, दया करें परमेश्वर जो रामू उठ खड़ा हो। एक बच्चे को इतनी कड़ी जाँच में रख देना उनके जोग नहीं हो रहा है।

तीसरी बोली—बहन, पोथी पुरान में लिखा है कि मालिक के धरम से परजा की बाढ़ होती है। मगर हमारे मालिक तो हम लोगों से शत्रु होकर लगे हैं। यह सब कलजुग की महिमा है। मालिक के यहाँ उत्सव हो तो उसको अपनी परजा को निहाल कर देना चाहिए। मगर हमारे मालिक के यहाँ जब जब

ब्याह-शादी हुई है तब तब हम लोगों की जान पर आ पड़ी है। आज इस झक्कड़ में कहार-टोले मे एक भी मर्द नहीं है कि रामू के लिये दौड़-धूप करके दवादारू का प्रबन्ध करे। सब एक एक करके बेगार मे पकड़ कर भेज दिये गये हैं—यहाँ तक कि रामू के बाप को भी छुट्टी नहीं मिली। फुलचन कहता था कि एक तो मालिक का कलेजा ही पत्थर का है, गरीबो को सताने में उन्हें एक तरह का रस मालूम होता है; दूसरे उनके अमले और प्यादे अपना रोब जमाने के लिये उनके कान भरकर उन्हे गरीबों के विरुद्ध उभाड़ते रहते हैं। कहार-टोले के सभी कहारो ने एक स्वर से गवाही दी कि रामू तीन चार दिन से बहुत बेचैन है, इसलिये सोनू को छुट्टी मिलनी चाहिये, पर उनके मुंशी और प्यादो ने जोर बाँधकर कह दिया कि रामू की बीमारी केवल बहाना है; छोटी जात के लोग योंही महीनो बीमार रहते हैं और मरते-मरते बच जाते हैं। सोनू से कोई पुराना बैर रहा होगा। उनके निजी काम करने में सोनू ने कभी टाल-मटोल की होगी, उसी का बदला लेने के लिए यह चाल चली है। बहन, ये लोग केवल कहने को भले आदमी हैं, नहीं तो इन लोगों का काम तो चाण्डालो से भी गया बीता है। आखिर कहारों के भी तो जान होती है। मगर यहाँ तो बात यह है कि दूसरी जगह के कहारों को बुलाने में मजूरी लगती है, अपने कहार तो पेट पर ही पालकी ढोते हैं। सोनू न जाता तो इस गाँव में दूसरे गाँव का कहार रुपये रोज से कम पर न जाता। सो तो बच गया।

पहली—सो ही देखो न। राजे-महाराजों के लिये सौ दो सौ कोई चीज़ नहीं है। इनकी भी तो कई हजार की आमदनी

है, पर कौड़ी-कौड़ी को दाँत से पकड़ते हैं। बेपीर होकर धन जमा करते हैं।

दूसरी—ऐसा धन भोगने से साग-सत्तू खाकर गुजर करना कहीं अच्छा है।

तीसरी—ऐसा धन दस बरस से अधिक नहीं रहता।

पहली—सुना है लड़की की शादी का सारा खर्च इलाके के रैयतों से सलामी के नाम पर वसूल किया गया है। किसी ने घी दिया है, किसी ने अनाज और किसी ने नगद रुपये। कहार-टोले से बकरों की माँग है, सो बारात आने पर लिये जायँगे। इनके इलाके में छेड़ी बकरी पालना भी एक आफत खड़ी करना है।

तीसरी—इतने लोगों का रोवाँ कलपाकर जलसा करने में कौन बड़ाई है। गाय मार कर जूते का दान करना इसी को कहते हैं। इसका फल कभी अच्छा नहीं होगा। ग़रीब की हाय पड़ ही जायगी। तुरत फल न मिले, पर कभी न कभी जरूर मिलेगा।

इतनी बातचीत करने के बाद तीनों ने एक घण्टे तक रामू की शुश्रूषा की। किसी ने सिर मे तेल रगड़ा, किसी ने पैर में जवाइन। रामू की मा की आँखो से अश्रुधारा पूर्ववत् गिर रही है। इतने में रामू को झपकी आने लगी। तीनों स्त्रियो ने रामू की मा से कहा—बच्चा सो रहा है। तुम भी कुछ खाकर आराम करो। हम लोग तो बग़ल में ही रहती हैं। हम लोगों से जो हो सकेगा, सो करने मे न चूकेंगी। यह कह कर तीनों अपने अपने घर को चली गईं। रामू की मा उसी भाँति बैठी आँसुओं के द्वारा कलेजे को बहा रही थी।

(३)

किशोरपुर पहुँचते-पहुँचते सन्ध्या हो गई । इन्द्र भगवान् का प्रकोप और भी बढ़ गया। यह देख दङ्गलसिंह और खड्ग-सिंह ने आगे जाने का साहस नहीं किया। एक गृहस्थ के घर डेरा डाला गया। गृहपति ने इन लोगो का यथाशक्ति आतिथ्य किया। कहारों ने खिचड़ी पका ली, दोनो प्यादो ने भात, दाल और आलू का भरता बनाया। सोनू से खाया नहीं गया, फिर भी सहयोगियों का मन रखने के लिये उसने मुँह जूठा कर लिया। दङ्गलसिंह ने कम्बल बिछाकर लेटते हुए कहा—कहारो, तुम लोग तुरन्त सो जाओ। खूब तड़के उठना होगा। चाहे पत्थर ही क्यो न पड़ता रहे, कल दस कोस की मंजिल तय करनी होगी। हॉ, सोनू, तुझे एक घण्टे के बाद सोना होगा। हम दोनो के पैर मल कर सोना। दङ्गलसिंह के ये शब्द सोनू को घाव पर नमक के समान लगे। उसने मन ही मन सोचा—हे भगवान्, कौन सी कुमति मेरे सिर पर सवार हो गई थी कि उस दिन मैंने इस सिपाही का कहना नही माना। उसका बदला लेने के लिये आज यह मेरे बेटे का काल होकर खड़ा हो गया है। काल तो कुछ दया भी करता है। जिसके प्राणो की उसे पिपासा रहती है उसे उठा ले जाता है पर उसके लिये रोनेवालो को जी भर रोने देता है, पर यह नर-काल तो रामू के सम्बन्ध मे मुझे जितना ही चिन्तित देखता है उतना ही ऊपर से वाक्यवाणो की बौछार करता है, और बेमतलब तङ्ग करता है। जो हो, चलो पैर भी दाब दूँ। सोनू ने दङ्गलसिंह के पैर मलना शुरू किया। दस पाँच मिनट के अन्दर ही सबके सब सो गये। सोनू अंगीठी के

निकट जाकर बैठ गया और कल्पना-द्वारा अपने दुर्भाग्य का चित्र खींचने लगा। इस मूसलधार वर्षा में अकेली रामू की मा रामू को कैसे सँभाल रही होगी। पानी की बौछार इस सुरक्षित घर में भी आ जाती है तो मेरी झोपड़ी की कौन कहे? हाय, चटाइयों से घेरघार करने पर भी रामू को सर्दी ज़रूर लग रही होगी। इस चाण्डाल ने मुझे अभी रामू से आठ कोस की दूरी पर फेंक दिया है, नहीं तो कम से कम हम दोनो रामू के शरीर से इस तरह लिपट जाते कि पानी की एक भी बूँद उसके शरीर पर न पड़ती। मगर अकेली बुढ़िया घबरा गई होगी। और रामू—क्या रामू अभी तक जीता होगा। परमेश्वर, तुम्ही सच्चे पिता हो, मै तो निमित्तमात्र हूँ। रामू की रक्षा करो। दयानिधान, अब और कठिन परीक्षा मे न डालो। मुझे ही मृत्यु दे दो, वह मुझे सहर्ष स्वीकार है। पर यह अन्धेर न करो। ओ बिजली, तुम न तड़को, रामू के लिये आज रुक जाओ। मेघ, तुम और न गरजो और पानी न बरसाओ; रामू को सर्दी लग जायगी। तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा। मेरा तो अवलम्ब ही जाता रहेगा। रामू की मा, ओ रामू की मा, देखना झोपड़ी का द्वार कहीं खुला न रहे, उपलों की आग भी जलती रहे। शीशी का तेल बच्चे के शरीर में लगाती रहना—ओह, यह काम तो मैं करता और तू सेक लगाती। पर मैं—ओह, मै तो रामू से कोसो दूर हूँ। सोनू रात भर इसी भाँति सोचता रह गया। बीच-बीच में कुछ झपकी-सी आ जाती थी, पर दो ही चार मिनट के बाद वह चौंक पड़ता और पूर्ववत् सोचने लगता। सवेरा होते ही सब कोई उठ पड़े। सोनू अङ्गीठी के निकट बैठा ऊँघ रहा था। दङ्गलसिंह

ने डाँट कर कहा—अबे बुड्ढे, रात भर क्या महफिल देखता रहा कि अभी बैठा मीठी मीठी नींद ले रहा है ? सोनू चौंक पड़ा। आकाश बादलों से कुछ हलका हो गया था। दङ्गलसिंह ने कहा—उठाओ पालकियाँ।

(४)

आज आकाश साफ था। कोई एक सप्ताह के बाद सूर्यदेव ने दर्शन दिये। रामू की माँ सोनू की प्रतीक्षा मे पल पल गिन रही थी। रामू के प्राणों की आज तक रक्षा कर सकी, इसलिये अब उसको आशा हो रही थी कि रामू के बाप के आ जाने पर दोनो मिलकर उसकी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेगे। उसकी इस आशा का दूसरा आधार यह था कि उसके ख्याल मे रामू के शरीर में आज ताप बहुत कम था, बल्कि नही के बराबर था। रामू के मुँह से आज कराहने के शब्द नही निकल रहे थे। वह अपेक्षाकृत शान्त था और अपना कष्ट प्रकट न कर माता को ही सन्तुष्ट करने की चिन्ता में व्यग्र था। रामू की मा परमात्मा को अनेक धन्यवाद दे रही थी क्योकि उसकी समझ में ये लक्षण ज्वरमुक्त होने के थे। वह बेटे का मुँह निहारती उसके पास बैठी थी। रामू चित पड़ा छप्पर की ओर देख रहा था। एकाएक उसने बुढ़िया की ओर रुख करके पूछा—माँ, आज तो बाबू आ जावेंगे ?

रामू की माँ—हाँ बेटा, आज ही शुक्रवार है, आज मालती देवी का ब्याह है। सन्ध्या को बारात आवेगी, तेरा बाबू उसी समय आ जायगा।

रामू—सन्ध्या होने मे कितनी देर है ?

रामू की माँ—बेटा अभी सवेरा ही हुआ है।

'ओह, तब तो दस बारह घण्टे की देर है'—कहकर रामू ने लम्बी साँस ली और कुछ देर तक आँखें मूँदे रहा, फिर सँभल गया-सा होकर बोला—माँ, मेरी बछिया को घास देती रहती हो न?

रामू की माँ—हाँ बेटा, तेरी बछिया को नित्य घास छील कर दी जाती है।

रामू—मगर माँ, बीमारी के दिन से रोज तुम्ही को घास छीलनी पड़ती होगी। कभी कभी सन्तू से मदद ले लिया करो, वह मेरी खातिर इतना जरूर करेगा।

रामू की माँ का गला भर आया। उसने रामू के मुरझाये हुए ओठो को चूम लिया और उसके ललाट पर हाथ फेरते हुए कहा—बेटा, अच्छा होने पर तू ही घास छीलना, मैं बैठी रहूँगी। सन्तू ननिहाल गया है, उसकी नानी बीमार है।

रामू—सन्तू मुझसे इतना प्रेम करता है कि बाबू यदि कहेंगे तो वह मेरे लिये खेती के काम में भी उनकी मदद कर दिया करेगा।

रामू की मा ने भोलेपन से उत्तर दिया—बेटा, तुझे इसकी क्या चिन्ता है। भगवान् तुझे नीरोग कर दें, फिर तू इच्छा भर बाबू की मदद करते रहना।

रामू ने विषय बदल कर कहा—माँ, मेरे पीछे तुम कब तक उपवास करती रहोगी? तुमने मेरी बेचैनी देखकर रात को भी कुछ नहीं खाया। अभी जल्दी से एक रोटी बनाकर खा लो।

सुनते ही बुढ़िया का कलेजा उमड़ आया। उसकी आँखों

से आँसू की बूदें गिर-गिरकर रामू के गालो को गीला करने लगीं। अपने को सँभालने की चेष्टा करते हुए वह बोली—बेटा, तू पन्द्रह दिनो का भूखा है; सूखकर काँटा हो गया है। तू मेरे लिये क्यों चिन्तित है? भगवान् तुझे स्वस्थ कर दे। तू खाये, पिये; मैं तेरे सामने आँखें मूँद लूँ, यही एक अरमान है। बेटा, आज तो तेरा जी अच्छा दीखता है, और दिन तो तू बहुत 'भूख' 'भूख' किया करता था, आज क्या भूख नही लगी?

रामू—नहीं माँ, आज भूख बिलकुल नही है।

हाँ, जी अच्छा है—अच्छा ही है। क्या बाबू सन्ध्या होने के पहले न आवेंगे? ओह, अभी उनके आने में बहुत देर है।

रामू की मा—नहीं बेटा, आज तुझे पथ्य दूँगी। अब तेरे शरीर मे ताप नहीं है। आज दिन भी अच्छा है; बदली भी हट गई है।

रामू—हाँ, दिन तो अच्छा है। मालती देवी के ब्याह का दिन है। इतना कहकर रामू ने बुढ़िया के हाथो को पकड़कर अपने सिर पर रख लिया और बोला—माँ, मेरे मुँह पर धीरे धीरे हाथ फेरो।

बुढ़िया गद्गद् होकर रामू के मुँह पर हाथ फेरने लगी। रामू की आँखें झपने लगीं। बुढ़िया ने थोड़ी देर मे देखा कि रामू सो रहा है। परमात्मा को धन्यवाद देकर उसने मन-ही-मन सोचा—बच्चा सो रहा है। कौन जाने जागने पर भूख लग जाय। चलो, थोड़ा-सा बकरी का दूध दुहकर रख लूँ। बुढ़िया बकरी के दूध के फ़िक्र में झोपड़ी के बाहर चली गई।

[५]

बारात धूमधाम से आ पहुँची। बाबू साहब के दरवाजे की शोभा अपूर्व हो रही है। भाँति भाँति की रोशनियों के प्रभाव से रात दिन का मुकाबला कर रही है। बारातियों की तैयारी भी बड़े ठाट-बाट की है। हाथियों की कतार की ओर दृष्टि डालने से हौदों की चमचमाहट आँखों को चकाचौंध कर देती है। प्रायः सभी सवारो के बदन पर ज़री की पोशाक है। घुड़सवारों की शान अलग है। वे अपने अपने घोड़ो को तरह तरह की चाल से दौड़ा रहे है। इनमें होड़-सी लग गई है। पैदल बारातियों की लाइन भी बहुत दूर तक चली गई है। बाजेवालों की भी कई टोलियाँ एक कतार में खड़ी अपने राग आलाप रही हैं। उनकी पोशाक लाल ही लाल है, जिसे देखकर आँखो को झुक जाना पड़ता है। भीड़ कई हजार की हो गई है, क्योंकि पड़ोस के गाँवों से लोग झुण्ड बाँध-बाँध कर तमाशा देखने आये है। कन्या-पक्ष के लोगो की तैयारी भी कुछ कम नहीं है। बाबू साहब एक सप्ताह से नाचघर सजाने में लगे हैं। आज अभी अभी सजावट ख़तम हुई है। उसकी शोभा देखते ही बनती है। कपड़े तथा फूलो की मालाओं, तरह तरह के गमलों, खम्भो पर की हुई विविध चित्रकारियो तथा, फर्श पर रखे और ऊपर लटकते हुए रंग-बिरंगे शीशों की क्या गिनती है। हर एक चीज सिलसिले से रखी है। दस-बीस हाथी घोड़ों का प्रबन्ध इस ओर से भी है, जिन पर चढ़कर बाबू साहब और उनके कुटुम्बी लोग बारातियों की दूर से अगवानी करके उन्हें लिवा लाये है। बाबू साहब रईसी की ठाट रखने के लिए केवल एक सादा चुस्त

ाजामा, सादा चपकन और एक सादी पगड़ी लगाये हैं, किन्तु उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि उनके घर के और सभी लोग ज़री को छोड़ कर और कोई कपड़ा न पहने। समधी साहब जब पालकी से उतरे तो सादगी मे बाबू साहब से कम नहीं थे, बल्कि एक अङ्गुल बढ़े हुए। उनके तो केवल धोती और मिर्जई थी। हाँ, मगर दोनों तरफ से चार चार वेश्याएँ मुकर्रर हुई थीं जिनका मुजरा अभी इस महफिल में होगा। मिलन आदि की रसम अदा हो चुकने पर बाराती लोग महफिल में आ जमे। जिस पालकी में सोनू जुता था, उसके सवार भी जब महफिल मे पधारे तो सोनू को छुट्टी मिल गई। उसे तो ये सारी तैयारियाँ उदासीनता से पूर्ण दीखती थी, उसने परमात्मा को स्मरण किया और रामू को देखने के लिये अपनी झोपड़ी की ओर वैसे ही दौड़ा जैसे सन्ध्या के समय गऊ बछड़े के लिये दौड़ती है। मगर उसकी जंघा भारी हुई जाती थी। वह जितना ही जल्द रामू से मिलना चाहता था, उतना ही अधिक उसके पाँव लड़खड़ाते थे। राह मे उसे गाँव का एक भी आदमी नहीं मिला जो उसे रामू की कुशल बता देता। सब के सब तो बारात देख रहे थे। वह ब्राह्मणों का टोला पार कर गया, अब राजपूतो का टोला आया। अगला टोला कहार टोला था। रामू की प्रिय मूर्ति उसकी आँखो के सामने नाचने लगी। उसके कानों मे थे—बाबू, तुम देर मे आये, अभी तो आठ बज रहे हैं। जिस ये शब्द गूँज रहे घड़ी सोनू ने झोपड़ी मे प्रवेश किया, रामू की माँ रामू की लाश को गोद मे लिये पागल की तरह बक रही थी—जागो, बेटा जागो। बकरी का दूध खोजकर तेरे लिये लाई हूँ, उसको पीलो।

सोनू धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। कई बूढ़ी औरतों ने उसको पकड़ा और सँभालने लगीं। रामू की माँ और ज़ोर से रोने लगी—जागो, बेटा, जागो। यह देखो, तुम्हारा बाबू भी आ गया। तुम्हारे लिये मालिक के भण्डार से मिठाई लाया है। उठकर खा लो। अब और न सोओ। बच्चा मेरा अच्छा हो गया है। मेरे बच्चे का ज्वर तो सवेरे ही छूट गया। देखो, शरीर में तनिक भी ताप नहीं है। जागो, बेटा जागो। मैं भी भूखी हूँ। चलो तीनों मिलकर खा लें। तेरे लिये बकरी का दूध दुहा था, थाली मैंने धो रखी है, गिलास मँजा साफ है; देर न करो। बाबू के साथ धान रोपने न जाओगे? बछिया के लिये घास छीलकर न लाओगे? आज ही न कहते थे कि बछिया के लिये घास मैं ही छीलूँगा, क्या यह बात इतनी जल्दी भूल गई? जागो बेटा, जागो। तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध है। आज सवेरे तुमने अपने मन से मुझे चुम्बन दिये थे, कितनी बातें की थीं। मगर अभी मैं इतनी बार चूम रही हूँ तुम इसकी परवा नहीं करते, बेख़बर सोये हो। जागो बेटा, जागो।

इतने में सोनू की मूर्च्छा टूटी तो वह बहुत ज़ोर से रोने लगा। इन दोनों की यह दशा देखकर पड़ोस की औरतें भी वैसे ही रो पड़ीं। मगर इस झोपड़ी का यह करुण विलाप बाबू साहब के दरवाजे पर पहुँचते-पहुँचते अँगरेजी बाजों के घोर नाद में विलीन हो जाता था।

(६)

किसी ने मंडप में ही पुरोहित जी के कान में सूचना दे दी कि रामू की मृत्यु हो गई है। पुरोहित जी एकदम बिगड़ उठे।

वे धीरे से पर क्रोध से बोले—शुभ घड़ी के बेले क्या बकता है! देखना, बाबू साहब, वर-कन्या और बरातियो में से किसी के कान में यह बात न पड़ने पावे। मुंशी कुलदीपलाल से पुरोहित जी की काना-फूसी हुई। मुंशी जी ने तुरन्त चार प्यादों को सावधान कर दिया कि कोई इस बात की चर्चा न करे। तुममें से एक दौड़कर कहार-टोले में चले जाओ और वहाँ रोना चिल्लाना बन्द रक्खो। सिपाही चारो तरफ तैनात हो गये। लोगों की जबान बन्द हो गई।

पुरोहित जी ने जब सब सामग्री तैयार कर ली तब बाबू साहब अन्दर आये और बोले—पुरोहित जी, अब क्या देर है?

पण्डितजी झट उठकर एक श्लोक पढ़ते हुए बोले—सरकार, कुछ विलम्ब नहीं है। वर-कन्या चिरञ्जीवी हों। वर को भीतर बुलवाइये। आप भी कन्यादान के लिये तैयार हो जाइये और साथ ही इस कुल-पुरोहित को आज निहाल कर दीजिये।

बाबू साहब ने हँसकर कहा—हाँ, आज आप मुँहमाँगी दक्षिणा लीजिए।

× × × ×

रात के तीन बजे होंगे। इधर अतिशबाजियाँ हो रही थीं, उधर श्मशान-घाट में रामू की चिता धू-धू जल रही थी।

———

रमणी-रत्न

सारे राज्य में राजा का यह संदेश डंके की चोट घोषित कर दिया गया—'प्यारे युवको, आज देश की स्वतन्त्रता संकट में है। विपक्षी राजा ने अपनी विशाल सेना से राज्य के प्रधान दुर्ग को घेर लिया है। रणवाद्यों की गम्भीर ध्वनि के द्वारा वह मुझे युद्ध के लिये आमन्त्रित कर रहा है। क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि आज तुम सब के सब मातृभूमि के कल्याण के लिये समरयज्ञ में प्राणों की आहुति देने को उद्यत हो जाओगे? आज तुम्हारी कठिन परीक्षा है। इसमें खरे उतर कर अपने राजा और देश की लाज रखो।'

राज्य के प्रत्येक नगर, प्रत्येक ग्राम में पहुँच कर राजा के इस दिव्य सन्देश ने नवयुवकों के हृदय में अद्भुत् उमंग का सञ्चार कर दिया। समरक्षेत्र मे जाने की तैयारियाँ घर घर होने

लज्जित सा होता हुआ भूमि की ओर देखने लगा; अनन्तर एक हाथ करुणा के कंधे पर रख तथा दूसरे से उसका चिबुक पकड़ते हुये प्यार भरे स्वर में कहा—'प्रिये, मैं इस विषय पर बहुत विचार कर चुका हूँ। कर्त्तव्य कहता है, रणक्षेत्र जाओ; किन्तु प्रेम तुम्हारे ही पास रहने को विवश करता है। तुम्हारा पाणिग्रहण किये अभी दो चार महीने भी नही हुये और यह कठिन अवसर आ पहुँचा। युद्ध कोई खेल तो नहीं है कि उसमे सम्मिलित होनेवाला सकुशल लौट ही आये। उसमे प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है। कौन जानता है मैं समरभूमि में सदा के लिये सो जाऊँ और फलतः तुम्हे अनाथिनी होकर जीवन की शेष घड़ियाँ काटनी पड़ें। हाय, तुम कितनी भोली हो!'

इतना कह कर युवक ने करुणा के अधर को चूम लिया और फिर उसकी बड़ी बड़ी आँखों को निहारता हुआ अपने को तृप्त करने लगा। करुणा के नेत्रों पर करुणारस ने आधिपत्य जमा लिया। वे अश्रुजल से परिपूर्ण हो गये। किन्तु उसने उसे मोतियों के रूप में बिखरने से रोकते रोकते कहा—'तो प्राण-नाथ, क्या तुम्हारे देश-सेवा-कार्य्य में मैं ही एक बाधक हूँ? मैं तुम्हारे गले पड़ गई अन्यथा तुम समर में अवश्य जाते। कृपा कर मेरी चिन्ता छोड़ दो। मैं अनाथिनी नहीं हूँगी। मेरा पूर्ण विश्वास है कि तुम देश का उद्धार करके लौटोगे और मैं तुम्हे विजय-माल पहनाऊँगी। युवक को बोध हुआ कि उसकी प्रिय-तमा के भोलेपन में कुछ अद्भुत् विशेषता है। किन्तु इस बोध से कोई लाभ उठाने की उसमें तनिक भी क्षमता नहीं थी।

वह विलास के आकर्षणों में वशीभूत हो चुका था। करुणा

की मनोहर मूर्ति उसके नेत्रों के सामने हरदम नृत्य किया करती थी। युद्ध जैसे भयावह व्यापार द्वारा प्राणों को संकट में डाल कर कर्त्तव्य पालन करने के विपरीत उसे अपनी अनिन्द्य सुन्दरी सुकुमारी प्रियतमा करुणा के साथ प्रणय-कौतुक करना ही मधुर जान पड़ा। उसने उसे अपनी छाती से लगाकर भुजाओं से कसते हुये कहा—'करुणे, मैं स्वेच्छा-पूर्वक ऐसा कोई कार्य्य नहीं कर सकता जिसके परिणाम मे तुम्हारे बिम्बाधर से वञ्चित होने की आशंका हो। मैं युद्ध से विमुख ही रहूँगा। तुम देश के लिये चिन्तित न होओ। देश-सेवा करने के लिये मेरे जैसे लाखों युवक तैयार हैं। एक मेरी अनुपस्थिति से कोई क्षति होने को नहीं।'

करुणा ने इस बार बिलकुल रो दिया। उसके नेत्रों से निकलती हुई अश्रुधारा युवक के कंधे को गीला करने लगी। युवक उसे मनाने की इस भाँति चेष्टा करने लगा मानो वह कोई रोती हुई छोटी सी बालिका हो। प्यार के बहुतेरे शब्द खर्च करके अन्त में उसने कहा—'करुणे, तुम्हें मेरी शपथ, रोओ नही। मै बिना युद्ध में गये ही राजा के यहाँ से शीघ्र ही तुम्हारे लिये कोई बहुमूल्य उपहार ला दूँगा।'

अश्रु-प्रवाह की गति को बड़ी कठिनता से रोकते हुये करुणा ने सिर उठाया और कुछेक क्षणों तक बिना एक शब्द का उच्चारण किये निर्निमेष नेत्रों से अपने पतिदेव के मुखमण्डल को देखती रही। उसके स्थिर नयन अपनी नीरव भाषा मे युवक को क्या उत्तर दे रहे थे अथवा उससे क्या प्रश्न कर रहे थे, कहानी के इस स्थल पर इन्हें समझाने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है।

युवक ने समझा—सही या ग़लत—निशाना ठीक बैठ गया। बड़े सन्तोष से करुणा के कपोलों को चूम कर वह बाहर चला गया। उसके सस्मित वदन पर विजय-गर्व अंकित था। प्रेमी की विजय रूठी हुई प्रेमिका को मना लेने ही में परिमित रहती है, ऐसा प्रणयशास्त्र-विशारद आचार्यों—अर्थात् कवियों—का मत है।

× × × ×

दूसरे दिन युवक को आवश्यक कार्य्य के लिए कहीं अन्यत्र जाने को विवश होना पड़ा। वह अपनी प्रेयसी से बिदा लेने आया। करुणा ने उसके चरणों की धूल मस्तक पर चढ़ाई, धैर्य का पूरा बल लगाकर आँसुओं को रोकते हुये अपने आराध्यदेव को सिर से पैर तक एकबार देखा, फिर उसे बिदा देने को राजी-सी होकर खड़ी हो गई। युवक को उसके इस भाव पर कुछ विस्मय हुआ, किन्तु उसे इसका कारण समझने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। उसने नियमानुसार करुणा के कपोलों पर प्रेम की मुहरें लगा कर प्रस्थान कर दिया।

उस दिन करुणा आठो पहर विचारमग्न रही।

[३]

दुर्ग के समीपवर्त्ती क्षेत्र में घमासान युद्ध छिड़ गया। आक्रमणकारी राजा की सेना से मुठभेड़ लेने के लिए प्रतिदिन युवकों के दल के दल समरभूमि में उतरने लगे। इस दूसरे पक्ष की सेना का नाम यथार्थ ही 'युवक-सेना' रखा गया था क्योंकि इसमे युवकों की संख्या अत्यधिक थी। प्रतिदिन भगवान् भास्कर के उदयकाल से उनके अस्तकाल तक घोर युद्ध होता। रात्रि में दोनों ओर के दल विश्राम करते। किसी दिन एक पक्ष प्रबल

रहता, किसी दिन दूसरा। धीरे धीरे दोनों पक्षों की शक्ति क्षीण होने लगी। किन्तु जब तक अन्तिम निर्णय न हो जाय तब तक दोनों पक्षों में किसी को युद्ध बन्द करना स्वीकार नहीं था। दोनों ओर से हजारों सैनिकों का बलिदान हो गया। रणक्षेत्र में रक्त की नदी बह गई। रुण्ड-मुण्डों के ढेर का पहाड़ बन गया। प्राणों की परवा न करनेवाले वीरों के परस्पर शस्त्रप्रहार को देखकर स्वयं काल भयभीत हो उठा। निदान वह दिन, अर्थात् जय-पराजय के निर्णय का दिन, आ पहुँचा। दोनों पक्षों की सम्मति से चौबीसों घंटे संग्राम जारी रखने का प्रस्ताव पास हुआ। बची-खुची शक्ति लेकर दोनो दल भिड़ गये। सारा दिन मस्तक—छेदन का व्यापार होता रहा। आक्रमणकारी राजा का दल प्रबल होता गया। युवक सेना अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़ते रहने पर भी शत्रु-सेना के पराक्रम से हार खाने लगी। अस्ताचल-गामी सूर्य के मलिन मुख को देखकर प्रतीत होता था कि उनका हृदय अगणित प्राणो की बलि देने वाले अभागे देश की भावी पराधीनता को सोचकर दुःखी है।

उन्होंने मानों इस युद्ध के अवांछनीय परिणाम को आँखों से न देखने ही के उद्देश से अस्ताचल की गुहा में अपना मुँह छिपा लिया। क्रमशः अँधेरी अर्थात् अन्धी रात ने प्रकृति पर अपना अधिकार स्थापित किया। नियम है जब अधिकारी नेत्र-विहीन होता है तब अन्यायियों की बन आती है। विपक्षी राजा की सेना को कुटिल अवसर हाथ लगा। उसने दुर्ग के फाटक को तोड़ने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। युवकदल के सैनिको को विजय की तनिक भी आशा नहीं रही। भग्नोत्साह

होकर दुर्गद्वार पर लड़ते हुये वे धराशायी होने लगे। उनका प्रतापी सेनापति भी शस्त्रों की मार से काल का शिकार हुआ। उनकी संख्या घट कर बहुत थोड़ी हो गई। शत्रुओं ने फाटक को करीब करीब तोड़ डाला। वे भीतर प्रवेश करने ही को थे कि हठात् अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित एक अश्वारोही युवक एक हाथ से रणवाद्य बजाते और दूसरे से राष्ट्रीय ध्वजा फहराते हुए देवता के वरदान की तरह युवक सेना के सहायतार्थ पहुँच गया। उसने ललकार कर कहा—'तरुणवीरो, मैं शशाङ्कदेव स्वयं राजा की अनुमति लेकर तुम्हारी सेना का संचालन करने के लिए पहुँच गया हूँ। कोई परवा नहीं यदि तुम्हारे सेनापति मार डाले गये। मेरे ऊपर निर्भर होकर उत्साह बढ़ाओ। मातृभूमि के लालो, अपना पूरा करतब दिखलाओ। अभी हम में काफी शक्ति है। इतना कहते हुए वह स्वयं सब के आगे बढ़ आया और बड़ी दृढ़ता से अस्त्र चलाने लगा। युवकसेना में अलौकिक जोश आ गया। वह चौगुने उत्साह से वार बचाने लगी। नवीन सेनापति शस्त्रास्त्रों की वर्षा के बीच घुसकर शत्रुओं का विध्वंस करने लगा। उसके शरीर पर चारो ओर से प्रहार हो रहा था। उसका सारा अंग रक्तार्द्र हो गया किन्तु उसके मुख पर पीड़ा का कोई चिह्न नहीं दीख पड़ता था। उसके दिव्य तेज को देखकर शत्रुदल का साहस टूट गया, उसके पाँव उखड़ गये। विजयनाद करते हुये युवक-सेना ने उसे बहुत दूर तक खदेड़ दिया। अपनी सेना को युद्ध से परांमुख देखकर आक्रमणकारी राजा ने विवश होकर सन्धि का झण्डा दिखलाया। युद्ध बन्द हो गया। युवक-सेना दुर्ग को लौट गई। नवीन सेना-

पति की जय' इस ध्वनि से आकाश गूँज उठा। किन्तु खेद!

विजय का श्रेय पानेवाला वीर युवक इस प्रकार आहत हुआ था कि वह घोड़े से उतरते ही मूर्च्छित हो गया। राजवैद्यों की सहायता से राजा स्वयं उसकी मूर्च्छा तोड़ने के उपचार करने लगे। मूर्च्छा तो उसकी भंग हुई, पर थोड़ी ही देर के लिए। उसके अलौकिक सौन्दर्य्य, अवर्णनीय सुकुमारता और अद्भुत आभा को देखकर दर्शक मुग्ध हो गये। राजा ने उसके चरणों में मस्तक नवाते हुये कहा—'युवक शशाङ्कदेव, आज सारा देश तुम्हारा ऋणी है। तुम्हारी ही वीरता से हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा हुई। तुमने डूबती हुई राष्ट्र-नौका को किनारे लगाया। किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि तुम बेतरह घायल हो गये। देखता हूँ तुम्हारा अन्त समीप है। क्या कृपा कर अपनी कोई अन्तिम इच्छा प्रकट करोगे, जिसे पूर्ण करके हम लोग कृतकृत्य होवें ?

युवक ने स्थिर दृष्टि से राजा को देखते हुये कठिनता से कहा—'राजन्, अब मुझे किसी विशेष वस्तु की इच्छा नहीं है। मेरे द्वारा देश का कुछ कल्याण हो सका—इसी से सन्तुष्ट हूँ। हाँ, यदि हो सके तो शीघ्र ही मेरे पतिदेवता शशाङ्कदेव को खबर दो। वे निकटवर्त्ती काञ्चनपुरी नामक नगरी मे मिलेंगे। मैं उनके आने तक जीवित नही रह सकूँगी। मेरा संस्कार उन्हीं के हाथ से हो—ऐसा प्रबन्ध कर देना। उन्हें सूचित कर देना कि मेरी कमर में एक पत्र है, उसे निकाल कर पढ़ लें।

इतना कहकर करुणा चुप हो गई। उसे असह्य पीड़ा हो रही थी। वह आकाश की ओर ताकती हुई दीर्घ साँस लेने लगी।

राजा उसके चरणों पर गिर कर बोले—'तो क्या तुम 'रमणी-रत्न' हो ? शक्तिस्वरूपे, किस भाँति तुम्हारी पूजा करूँ? धन्य देवि !'

उपस्थित जनता और सैनिक चिल्ला उठे—

'धन्य देवि !'

देखते-देखते करुणा की आँखें सदा के लिये मुँद गई। अहा, कितना सुंदर अन्त था !

(४)

दूसरे ही दिन द्रुतगामी रथ पर युवक शशाङ्कदेव उस स्थान को पहुँचाया गया जहाँ करुणा का सुन्दर शरीर लाखों दर्शको के बीच एक स्वर्ण-सिंहासन पर रखा था। उस घड़ी राजा उस शरीर की विधिवत् आरती उतार रहे थे। युवक शशाङ्कदेव अपनी प्रेयसी की निर्जीव देह को गोद में रख कर फूट-फूट कर रोने लगा। बहुत विलाप करने के बाद उसने करुणा के कटि-प्रदेश से पत्र निकाल कर उसे रुँधे हुये कण्ठ से पढ़ा।

उसमें लिखा था—

'प्राणाधार, क्षमा करना। मैंने तुम्हारी अनुमति प्राप्त किये बिना ही स्वतन्त्रता-युद्ध के इस यज्ञ में अपने तुच्छ शरीर का हवन कर दिया। किन्तु मुझे सन्तोष है कि ऐसा मैंने तुम्हारे ही कल्याण के लिये किया है। मैं दूसरे लोक में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। क्षात्र-धर्म के अनुसार देश-सेवा के लिए ही प्राणोत्सर्ग करके मुझसे मिलो। उस अवस्था का मिलन अधिक आनन्द-दायक और स्थायी होगा। नित्य सुख के लिए अनित्य सुख का

त्याग करना ही उचित था। इतना विश्वास रखो मेरा ध्यान तुम्हारे ही चरणों में रहेगा।

तुम्हारी दासी—
करुणा।'

× × × ×

कहते हैं युवक शशाङ्कदेव ने उस पत्र को शीशे में मढ़वा कर अपने शयन-भवन में लटका दिया। वे उसकी नित्य पूजा करते। उन्होंने राजसेना मे भरती होकर धीरे-धीरे सेनापति के पद को पाया और अन्त मे एक भयंकर युद्ध मे शत्रुओं को पराजित करके करुणा ही की तरह वीरगति को प्राप्त हुये।

—

न्याय

विशाल न्यायालय दर्शकों से ठसाठस भरा था। न्याया-सन पर राजा स्वयं सुशोभित थे। उनके सम्मुख एक ओर शोक-सन्तप्त वृद्ध भील खड़ा था, दूसरी ओर जञ्जीर में जकड़ा हुआ अपराधी। अपराधी के सिर पर तथा दोनों पार्श्वों में राज-सैनिकों की नंगी तलवारें चमक रही थीं। ग़जब का सन्नाटा छाया हुआ था।

× × × ×

यथानियम घण्टा बजा। सारी सभा सतर्क हो गई। राजा ने सामने रखे हुए पत्रों के ढेर से ध्यान हटाकर वृद्ध भील की ओर दृष्टि डाली। वृद्ध के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली। क्षुब्ध सागर में नौकाओं की जो दशा होती है, वही दशा उसके नेत्रों में पुतलियों की हो रही थी। वे डूबती-उतराती

थीं। शोक की उपमा समुद्र से देकर कवियों ने तनिक भी अत्युक्ति नहीं की है। अश्रु-प्रवाह की गति को रोकने की व्यर्थ चेष्टा करते हुये वृद्ध ने बड़े कष्ट से निवेदन किया—पृथ्वीनाथ, तुम्हारे राज्य में, जहाँ बाघ और बकरी एक घाट पानी पीती हैं, यह अन्याय ! हाय ! मेरी वृद्धावस्था के एकमात्र अवलम्ब को...... ।

वृद्ध का कण्ठ रुक गया। उसका अंग अंग शोक से व्याकुल हो उठा। उसकी विकलता देखकर उपस्थित जनता का कलेजा उमड़ आया। अपराधी के सामने उसका अपराध नग्ननृत्य करने लगा। वह माँ धरित्री के आँचल में लज्जा की आँखें छिपाने की चेष्टा करने लगा। जघन्य से जघन्य पाप करनेवाला भी माता से क्षमा और आश्वासन की आशा रखता है। यह नियम है। राजा ने दीर्घ साँस ली। उनके विशाल नेत्रों से भी, विपुल धैर्य्य की आज्ञा की अवहेलना कर, आँसू की दो बूँदे छलक पड़ी। उन्हे किसी किसी ने देखा। कुछेक क्षणों तक फिर आश्चर्य-जनक स्तब्धता छाई रही। अनन्तर राजा ने अपराधी पर दृष्टि-पात किया। अभी जिन नेत्रों से आँसू टपके थे उनसे चिनगा-रियाँ निकलने लगीं। क्रोध तथा ग्लानि से राजा के ओठ काँप रहे थे। गुरु-गम्भीर स्वर में उन्होंने अपराधी से पूछा—राज्य का कलंक, वृद्ध के कथन का प्रतिवाद कर सकता है ?

नतमुख अपराधी ने अपने पैर के नख से मिट्टी खोदते हुए धीरे से बस इतना ही कहा—धर्मावतार, दण्डनीय हूँ।

राजा ने एक बार न्याय-भवन के एक कोने से दूसरे कोने तक दृष्टि दौड़ाई, कुछेक क्षण मौन तथा चिन्ताशील रहे; फिर लेखनी उठाई। जिस घड़ी उनकी लेखनी पत्र पर दौड़ रही थी,

उनके मुख-मण्डल से एक अपूर्व आभा निकल रही थी। दण्ड-निर्णय लिखकर मंत्री के हाथ में देते हुए राजा बोले—वृद्ध भील तथा अपराधी, अभियोग का परिणाम कल सुनाया जायगा।

राजसभा विसर्जित हुई।

अपराधी कारागार को भेज दिया गया।

(२)

राज्यान्तर्गत किसी पहाड़ी ग्राम का रहनेवाला वह वृद्ध भील दरिद्रता की अधिष्ठात्री देवी का कृपाभाजन था। उसका सर्वस्व था बस उसकी एक मात्र संतान—एक स्वस्थ, सुन्दर युवा पुत्र, जिसकी आयु प्रायः बीस वर्ष की थी। यही पुत्र उसके जीवन का प्रकाश, सन्तोष और अवलम्ब था। पिता और पुत्र के इस छोटे से परिवार का व्यवसाय था आखेट। अहेर के पशुओ के मांस तथा जंगली फलों से पेट भरते हुए दोनों जीवन यापन कर रहे थे। एक दिन वृद्ध भील के पहाड़ी ग्राम के निकटवर्त्ती जंगल मे एक दारुण घटना हुई। दैवयोग से एक ही मृग पर दो शिकारियों ने वार किया। मृग तो चोट खाकर मर गया, किन्तु मरने मे उससे एक बड़ी भारी भूल हो गई। उसने समय बचाकर यह निर्णय नहीं दे दिया कि वह किस शिकारी के तीर से मरा। निदान मृग के मृतक शरीर के लिये, जैसा कि नियम है, दोनों शिकारियो में घोर विवाद हो गया। विवाद का परिणाम बड़ा ही भयङ्कर सिद्ध हुआ। दोनो शिकारियो मे से एक ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को, क्रोध के आवेग मे आकर, तीर से मार डाला। कहना नही पड़ेगा कि मारनेवाला शिकारी था न्यायालय

का 'अपराधी' और मारनेवाला, वृद्ध भील का 'एकमात्र अवलम्ब'। 'दैवोऽपि दुर्बल घातकः' प्रसिद्ध है।

(३)

अन्तःपुर में दुग्धफेन-निभ शय्या पर बैठे राजा विषाद की साक्षात् मूर्त्ति हो रहे थे। पास ही बैठी रानी उनके चरणों को अपने गरम आँसुओ से भिगो रही थी। राजा भी अपने नेत्र-जल से रानी के उजले-काले केशो को गीले कर रहे थे। इस अश्रुविनियम के व्यापार से प्राय: थककर दोनो ने एक बार एक दूसरे को देखा।

रानी के कातर नेत्रों ने पूछा—नाथ, क्या यह संकट नितांत निरुपाय है?

राजा के विह्वल मौन ने उत्तर दिया—हाँ।

रानी के कम्पायमान नीरव अधर ने प्रश्न किया—आर्य्य, इतने यज्ञ-जाप, दान-प्रदान का अन्तिम परिणाम क्या यही है?

राजा के भ्रूकुण्ठन पर विवशता की मुद्रा बनाकर विकल 'विवेक' ने कहा—प्रिये, राजधर्म कठोर होता है।

परस्पर का सम्वाद समाप्त हुआ। फिर वही होली शुरू हुई। आँखों की पिचकारियाँ; आँसू का रंग!

(४)

दूसरे दिन यथानियम पहले अन्य पदाधिकारीगण, तब महामंत्री और पश्चात् राजा स्वयं दण्डगृह मे पधारे। अपराधी दण्डवेदिका पर सशस्त्र सैनिकों की चौकसी में खड़ा था। एक निश्चित स्थल पर वृद्ध भील उपस्थित था। दण्डभवन में एक ओर दर्शक प्रजागण की भीड़ लगी थी। समय होते ही राजा

ने स्तब्धता को भंग करते हुए गम्भीर गर्जनपूर्वक कहा—शोकातुर वृद्ध, यह कुलकलङ्क तुम्हारे पुत्र की हत्या का अपराधी है। इसने तुम्हें निस्सन्तान कर दिया; अतएव तुम्हें अधिकार है कि तुम इसके पिता को भी निस्सन्तान कर दो।

वृद्ध के हाथ में खड्ग देते हुए राजा फिर बोले—तुम मेरी आज्ञा से निस्संकोच होकर इस अपराधी के सिर को कन्धे से विमुक्त कर दो।

संकेत पाते ही राज-सैनिकों ने जञ्जीर में जकड़े हुए अपराधी को बलिदान के पशु की तरह पकड़कर बध के लिये तैयार किया। अपराधी ने इतनी तत्परता से गर्दन झुका दिया मानो वह अभिलषित पुष्पहार पहनने के लिये उद्यत हुआ हो। वृद्ध ने तलवार उठाई। राजा के मुख का तेज अलौकिक हो रहा था। उपस्थित जनता तथा राज कर्म्मचारी-गण किंकर्त्तव्य विमूढ़ थे।

उठी हुई तलवार गिरते ही अपराधी के रूप में खड़े स्वयं राजकुमार का मस्तक—वह मस्तक जो कभी राजमुकुट से विभूषित होता—प्राणहीन होकर भूलुठित होगा। वृद्ध राजा की तपस्या का फल—राजवंश का निरा आधार—कामदेव-सा सुकुमार और सुन्दर राजकुमार उसीकी आज्ञा से अभी-अभी मार डाला जायगा। किसके द्वारा? एक अकिञ्चित भील के द्वारा। क्यों? न्याय-रक्षा के लिये। राजा धन्य है?

समस्त प्रजावर्ग अपने हृदय-सम्राट् न्यायमूर्त्ति राजा के लाड़ले की प्राण-रक्षा के लिये व्याकुल था। किन्तु उसे इसका कोई मार्ग नहीं दीखता था। जनता के मुख्य से मुख्य व्यक्ति, राज-भृत्यों के दल के प्रमुख से प्रमुख पदाधिकारी—यहाँ तक

कि महामंत्री को भी राजा के सम्मुख राजपुत्र की प्राण-भिक्षा का प्रस्ताव करने का साहस नहीं होता था।

राज्य-शासन में न्याय-बन्धन आदर्श तक पहुँचा हुआ था। राजनियमों—क़ानूनों—की पुष्ट व्याख्या करके उनके अर्थ के स्थान में अनर्थ रखने की चाल ही नहीं थी। उनकी अर्थात् कानूनों की—घर-घर पूजा होती थी, क्योंकि उनके द्वारा न्याय की वास्तविक रक्षा होती थी। उनकी महिमा थी उनकी सरलता में, उनकी शक्ति थी उनके निष्पक्ष प्रयोग में। 'यह राजकुमार है, वह एक दरिद्र भील का पुत्र'—ऐसे विश्लेषीकरण के कष्ट से क़ानून मुक्त थे। अपराध और दण्ड का कार्य्य-कारण सम्बन्ध, मौखिक तर्क से नहीं, ठोस व्यवहार के द्वारा, अभेद रूप से स्थापित था। ऐसी वस्तुस्थिति में अपराधी के लिये, चाहे वह राजकुमार ही क्यों न हो, क्षमायाचना करना विपत्ति को आमन्त्रित करना था। दण्डगृह में उपस्थित जन-समूह व्याकुल दृष्टि से उस विषम मुहूर्त्त की प्रतीक्षा कर रहा था जब कि, एक निर्धन जंगली भील के हाथ से खड्ग गिरकर उनके भावी राजा का अन्त कर देगा। किन्तु,............

किन्तु परमात्मा की अनुकम्पा से वह नृशंस मुहूर्त नहीं आया। वृद्ध का हाथ रुक गया। उसने तलवार भूमि पर रख दी और राजा के चरणों पर गिर पड़ा। अश्रुवर्षा करते हुए उसने निवेदन किया—न्याय देवता, अब तो राजकुमार को मार डालने से भी मेरा पुत्र लौट नहीं सकता। अतएव अब मुझे वर मिले कि मैं राजकुमार के लिये क्षमायाचना करूँ। मैं सन्तुष्ट हूँ, अब मुझे कोई दुखड़ा रोना नहीं है।

उपस्थित जनसमुदाय ने तुमुल हर्षनाद किया। उनके नैराश्यजनित तिमिराच्छन्न हृदयाकाश में आशा की विद्युत् चमक उठी। जगन्नियन्ता को उनकी आत्माएँ शतशः धन्यवाद देने लगीं।

वृद्ध की प्रार्थना सुनकर राजा कुछ देर तक चिन्तामग्न रहे। अनन्तर गम्भीरतापूर्वक बोले—

वृद्ध भील, न्यायासन से मैं इस अपराधी को पूर्ण क्षमा नहीं दे सकता। यह राजवंश की कालिमा है। तुम्हारी सम्मति से इसे केवल प्राणभिक्षा देता हूँ। किन्तु इस पाप का प्रायश्चित दण्ड भोगे बिना नहीं होगा। दण्ड का स्वरूप कल घोषित होगा।

सभा विसर्जित हुई।

(५)

दूसरे दिन राजदण्ड घोषित हुआ उसके शब्द थे........ 'आज से अपराधी राजकुमार वृद्ध भील का पुत्र हुआ। वह आजीवन उसके साथ रहकर उसकी पुत्रवत् सेवा करेगा। वह राज्याधिकार तथा राजवंश से च्युत कर दिया गया। उसकी जाति तथा वंश वृद्ध भील की जाति और वंश से समझे जायँगे। बस।' कहते हैं, इस राजाज्ञा का पालन अक्षरशः किया गया।

—————

नेत्राञ्जन

विधवा-आश्रम का मन्त्रिपद स्वीकार कर मैं विनोद बाबू के व्यङ्गों का लक्ष्य बन गया। जब कभी भेंट होती तो वे ऐसे वाक्यों से मेरा स्वागत करते कि जिनको सुनकर मैं भीतर ही भीतर कटकर रह जाता। यदि कोई दूसरा व्यक्ति मुझे इस प्रकार छेड़ता, तो मैं उसकी अच्छी खबर लेता, अथवा यो कहिये कि मैं उससे घोर वाक्युद्ध ठानता और सैकड़ों युक्तियों द्वारा यह सिद्ध करके दिखला देता कि वर्त्तमान परिस्थिति में समाज को और गहरे पतन से बचाने के लिए विधवा-आश्रमों की कितनी आवश्यकता है, जिससे विपक्षी को फिर जीभ हिलाने का साहस तक न हो सकता। पर विनोद बाबू से मेरी लाचारी थी। विनोद बाबू मेरे स्कूल-काल के सहपाठी और मित्र होकर भी मेरे सीनियर थे और मैं उनसे संकोच खाता था। जब किसी विषय पर

वाद-विवाद होता तो मैं उनके सामने दब कर ही बोलता। किन्तु जब उस दिन विनोद बाबू ने भेंट होते ही जैसे मेरे भावों की एकदम उपेक्षा करते हुए ताना दिया—'कहिए मन्त्री जी, आज कोई नई चिड़िया फँसी या नहीं?' तो मैं ऊब उठा। अब और शील-संकोच के फेर में पड़ कर अपने व्यक्तिगत विचारों का स्वतन्त्र रूप से उन पर प्रकट न करना, मुझे अनुचित प्रतीत होने लगा। मैंने कुछ रुखाई और दृढ़ता से कहा—विनोद बाबू वसे हँसी में आप जो चाहे कह लीजिये, मुझे कुछ आपत्ति नहीं होगी। पर मैं अपने मत पर दृढ़ हूँ और आप से भी अनुरोध करता हूँ कि विषय को गम्भीरतापूर्वक सोचकर किसी सिद्धान्त पर पहुँचें। मुझे विश्वास है कि यदि आप परम्परा को अनुचित महत्व नहीं देंगे तो आपको मेरे विचारो से सहानुभूति हो ही जायगी।'

विनोद बाबू ने हँसकर कहा—आज तो तुम जैसे मुझे दीक्षा देने को तुल गये हो। पर यह तुम्हारा भ्रम है कि मैं परम्परा का अन्ध भक्त हूँ। तुमने जो यह समाज की बहकी स्त्रियो को चराने और रूठी स्त्रियों को मनाने का ठेका लिया है, इसका स्त्री-समुदाय की मनोवृत्ति पर कैसा असर होगा इसे भी कुछ सोचा है? स्त्रियाँ स्वभाव से ही चञ्चल हुआ करती हैं, फिर उनके लिये सभाओ मे चिल्ला-चिल्लाकर रोना, उनके लिये नगर-नगर मे विधवा-आश्रम खोलना, उनकी चञ्चलता से सहानुभूति करना है—उनको कर्त्तव्य-पथ से भीरु बनाना है। पुराने रिवाजों के अनुसार उन पर जो बन्धन डाले जाते हैं, उनके साथ जो कड़ाइयाँ की जाती है, वे क्षम्य हैं; क्योकि इन

सबके मूल में यही सिद्धान्त है कि उन्हे अपने शेष जीवन के उत्तर-दायित्व का बोध होता रहे। पर नई रोशनी के बाबू लोग इसे अन्याय समझते हैं। मेरी बुद्धि में इस विचार के दो कारण हैं, एक तो पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से हमारे नव-शिक्षित भाइयों के नैतिक आदर्श का पतन और दूसरा उनके हृदय की अनुचित कोमलता।

मैंने आवेश में आकर उत्तर दिया—विनोद बाबू, कदाचित् आपको समाज की भीतरी अवस्था से परिचय नहीं है। यदि आपको वास्तविकता का पता रहता तो आपके ऐसे विचार कभी न होते। भला आज विधवाओं के साथ जैसी कठोरता के व्यवहार किये जा रहे हैं, उन्हे कौन अन्याय नही कहेगा? आप समाज की बागडोर थामनेवाले भद्रनामधारियों को उच्च नैतिक आदर्श के भक्त समझते हैं, यह आपकी सरासर भूल है। आपको यह जानने की आवश्यकता है कि ये लोग हमारी देवियों के अकाल-वैधव्य को लानेवाले तथा उनके धर्माचरण को नष्ट करनेवाले है। पर जब ये ही अपने न्यायासन पर विराजमान होते हैं तो ढकोसला बनाये रखने के लिये कठिन से कठिन दण्ड का विधान करते हैं। ऐसे अन्यायियों से पीड़ित अबलाओं को आश्रय देना, उनको अपने स्वत्वो का बोध कराना, मैं अपना नितान्त कर्त्तव्य समझता हूँ। ऐसा करना हृदय की अनुचित कोमलता का परिचायक नहीं है बल्कि ऐसा न करना नृशंसता का द्योतक है। आपने यह भी बिना सोचे कह दिया कि नवशिक्षित दल का नैतिक आदर्श नीचे गिर गया है। हमारा आदर्श ज्यों का त्यो है। मगर हम आदर्श को व्यवहार में लाना चाहते हैं, आदर्श का स्वाँग नहीं रचना चाहते।

विनोद बाबू ने फिर व्यङ्ग की शरण लेकर कहा—तुम स्त्रियों के मायाजाल में फँस गये हो। कुछ विधवाओं के मुँह से समाज की झूठी शिकायतें सुनी होंगी, बस ले उड़े। क्या तुमने स्त्रियों को बात बात में रोते नहीं देखा है ?

इतने में हम दोनों स्टेशन पहुँच गये। जेठ की कड़ी दुपहरी थी, गाड़ी के आने में घण्टे भर की देर थी। विनोद बाबू को इसी गाड़ी से इलाहाबाद जाना था। मैं तो हर ट्रेन के समय इस उद्देश्य से स्टेशन जाता था कि कहीं समाज की पद-दलित किसी अबला को विक्षिप्त पाऊँ तो उसे आश्रम में शरण दूँ। विनोद बाबू से चौराहे पर मेरी भेंट हो गई थी। स्टेशन पर मुसाफिरों के शोर-गुल के कारण विनोद बाबू के साथ जो विचार-विनिमय हो रहा था, उसमें बाधा पड़ गई। हम दोनों एक दूसरे को अपने मत की श्रेष्ठता दिखलाना चाहते थे। मैंने विनोद बाबू से कहा—अभी तो गाड़ी के आने में विलम्ब है। चलिये गोदाम में चलकर बैठें। वहाँ कोई आदमी नहीं दीखता।

हम लोग जल्दी-जल्दी वहाँ पहुँचे। स्थान की निर्जनता देखकर हम दोनों को कुछ सन्तोष हुआ। बस, बोरो की ढेर पर गाढ़ी नींद मे सोए हुए एक कुली को छोड़कर वहाँ कोई जीवधारी नहीं था। हम दोनों अपनी धुन में मस्त थे, अतएव बड़ी तत्परता से एक बेञ्च पर बैठकर बहस के लिये तैयार हो गये। मैंने विनोद बाबू के अन्तिम व्यङ्ग का उत्तर देना ही चाहा था कि मेरी दृष्टि बरामदे के दूसरे किनारे की ओर दौड़ गई। मैंने देखा, हम लोगों के सामने ही एक मलिन-वस्त्रा युवती सिर

नीचा किये दीवार के सहारे बैठी है। मेरे हृदय में सन्देह का उदय हुआ। मैंने विनोद बाबू का ध्यान उधर आकर्षित करते हुए उससे पूछा 'आप कौन हैं ?' युवती ने धीरे से सिर उठा कर मेरी तरफ देखा। युवती का सौन्दर्य देखकर मैं विस्मित होकर रह गया। विनोद बाबू मेरा मुँह ताकने लगे। मेरे हृदय ने कहा—अरे, यह तो किसी निर्दय ने सम्पूर्ण खिले गुलाब के पुष्प वृन्त जड़ से तोड़ और मसल कर कूड़े-करकट में फेंक दिया है! शरीर की उज्वल कान्ति चिन्ता की मलिन छाया पड़ने पर भी मेघ को चीरकर छिटकनेवाली चाँदनी की तरह चमक रही है! मैंने बड़े प्रेम और सहानुभूति के स्वर में फिर पूछा—'आप कौन हैं ?' कुछ देर तक युवती मुझे एकटक निहारती रही। उसकी आँखो में आँसू सूख गये हों, ऐसा मालूम पड़ता था। मेरे मुख का भाव देखकर उसे मुझपर कुछ विश्वास-सा हुआ। उसने नैराश्य के स्वर मे धीरे से कहा—'बाबू जी, मैं एक अबला हूँ।' इस उत्तर से सन्तुष्ट न होकर मैंने फिर प्रश्न किया—'क्या आप हम लोगों पर विश्वास रखकर अपना पूरा परिचय बतला सकती हैं ?''

युवती—'मेरा पूरा परिचय एक पूरी करुण कहानी है, उसे क्या सुनाऊँ ?' वाक्य समाप्त होते-होते युवती की आँखें डबडबा आयी और उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मैंने फिर अनुरोध किया—तो फिर आप अपना वृत्तान्त अवश्य कह डालें। हमलोग आपकी यथाशक्ति सहायता करेंगे।

युवती की आँखों से आँसू निकल कर उसके कपोलों पर बहने लगे। उसने रोने के स्वर मे कठिनता से कहा—'नहीं

बाबू जी, मैं आपको अपने लिये कष्ट नहीं देना चाहती। परमात्मा आपका भला करें।

मैं समझ गया कि मेरे सहानुभूति के शब्दों ने युवती की दुरवस्था-जनित वेदना को और भी तीव्र कर दिया है। उसकी मुखाकृति से यह स्पष्ट झलक रहा था कि मेरा 'सहायता दान' का वचन उसके घायल स्वाभिमान को तीर की तरह लगा है। वास्तविक निरवलम्ब अवस्था भी आत्म-गौरव को उतना नहीं खलती, जितना परावलम्बन की निरी कल्पना! युवती के हृदय की कोमलता को ध्यान मे रखते हुए मैंने बड़े स्नेह से कहा—'आप मुझे पराया समझती हैं, इससे मेरे जी को दुःख हो रहा है। धर्म की दृष्टि में मैं आपको अपनी बहिन समझता हूँ, अतएव आपके कष्टों के निवारण का प्रयत्न करना तो मेरा कर्त्तव्य ही है। आप मेरे सामने अपने जीवन की दुर्घटनाओं का वर्णन करने तथा मुझसे आपकी जो क्षुद्र सेवा हो सकेगी, उसे स्वीकार करने में तनिक भी ग्लानि न मानें'। मेरे इस कथन का युवती पर अच्छा असर हुआ। उसके मुख की चेष्टा से मैंने अनुमान किया कि वह मेरी प्रार्थना पर कुछ सोच रही थी। कुछ देर बाद उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर हृदय के आवेग को रोका, अञ्चल से आँसू पोंछे और कुछ सँभल कर बैठी। फिर मानों मेरा मन रखने के लिये उसने मेरी ओर देखते हुए इस प्रकार अपना परिचय देना आरम्भ किया—

"बाबूजी, मेरा घर इसी जिले के अन्तर्गत है। मैं जाति की ब्राह्मणी हूँ। आठ ही वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ और सोलहवें वर्ष में मैं काल-चक्र की महिमा से विधवा हो गई। मेरे

पति-देव को यक्ष्मा का रोग हो गया था। वैधव्य-काल से लेकर आज तक मैंने पति-शोक के भार को वहन करती हुई जिन बाहरी दुखों को भोगा है, उनका वर्णन ही मेरा पूर्ण परिचय है।"

युवती सहसा रुक गई। वह आगे का हाल कहना चाहती थी, पर आँसू कलेजे से उमड़ कर उसके कण्ठ और आँखों में पहुँच चुके थे। मैंने सान्त्वना देते हुए कहा—आपको धीरज धारण करना चाहिये। आप पर जो कुछ बीत चुका है, वह तो बीत ही चुका, अब आप भविष्य के लिये चिन्ता न करें।

युवती थोड़ी देर तक मौन रही, फिर रुँधे हुए कण्ठ से कहने लगी—"बाबूजी, मेरे प्राणाधार के परलोक-गमन के बाद कुछ दिनों तक घर में दारुण शोक छाया रहा। घर में तीन ही प्राणी बच रहे थे। बाहर दरवाजे पर पण्डितजी सिर थामे बैठे रहते, भीतर माताजी और मै विलाप करती। पण्डितजी का अनुज सहोदर छिन गया था; माताजी का लाल उठ गया था; इस निर्धनी का सर्वस्व खो गया था। पर जब दिन-रात हाथ-पैर पटकते रहने पर भी क्रूर काल नहीं पसीजा तो हम लोगों ने झूठी आशा को छोड़कर नैराश्य की शरण ली। किन्तु मेरा तथा माताजो का नैराश्य असन्तोष का था, अतएव हम दोनों अशान्त ही रही। हाँ, पण्डितजी ने पूर्ण रूप से सन्तोष ग्रहण कर लिया और गृहस्थी के धन्धों मे लग गये। पण्डितजी ने स्वयं शोक से छुट्टी लेकर हम लोगों को समझाना शुरू किया। उन्होंने कितने कथाएँ कहीं, कितने दृष्टान्त दिये और कितने शास्त्रोक्त वचनों के अर्थ बतला कर इस संसार की क्षण-भंगुरता सिद्ध की, यह मुझे स्मरण नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य यही

है कि पण्डितजी बहुत यत्न करने लगे कि हमलोग भी शोक को भूलकर घर के काम-धन्धों में लग जायँ। समय की गति की सहायता मिल जाने से पण्डितजी को अपने प्रयत्न में धीरे-धीरे सफलता मिलने लगी। माताजी को और मुझको भी सन्तोषपथ पर अग्रसर होना पड़ा। हमलोग पहले की तरह घरेलू कामों में जी बहलाने लगीं। पर सच पूछिये तो यह दिल बहलाना नहीं था, दिन काटना था। पण्डितजी को हमलोगों की—विशेषकर मेरी—उदासीनता से दुख होता था। इसलिये वे तरह-तरह के ढंग लगाकर मेरी उदासीनता दूर करने के प्रयास में प्रविष्ट हुए। भीतर आते ही वे माताजी से मेरे सम्बन्ध में भाँति-भाँति के प्रश्न करते—'दुलहिन ने भोजन किया या नहीं? दुलहिन का स्वास्थ्य कैसा है? उसकी साड़ी तो फटी नहीं है?' मैं पण्डितजी की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध चिन्तित भाव बनाये रखने में कर्त्तव्य की हानि तो समझती थी, पर लाख चेष्टा करने पर भी मुखपर उल्लास नहीं ला सकती थी। तथापि मैंने पंडितजी को अपनी चिन्ता से मुक्त करने के उद्देश्य से अपने को इतना योग्य बना लिया था कि दौड़-धूप करके काम कर सकती थी; और कभी-कभी मुझे पण्डित जी के सन्तुष्ट हो जाने के लिये मेरा इतना ही करना काफी जान पड़ता था। आगे चलकर मैंने देखा कि पण्डितजी अब एक नये ही ढंग से मुझे खुश करने की चेष्टा कर रहे हैं। जमींदार बाबू के यहाँ से जब आते तो सीधे माताजी के पास चले जाते और कोई न कोई चर्चा चलाकर मेरी प्रशंसा करने लगते। भोजन के समय माताजी से कहते—'मया, दुलहिन के हाथ की तरकारी बहुत अच्छी बनती है।

तुमने इतने दिनों तक तरकारी बनाई; पर दुलहिन की बनाई तरकारी मे जो स्वाद है, वह तुम्हारी बनाई में कहाँ ?'

माताजी मेरी इस प्रशंसा को सुन कर गर्व करतीं, पर मेरे वैधव्य का स्मरण हो जाने से उनका गर्व तुरन्त शोक मे परिणत हो जाता और उनकी आँखों से आँसू की दो बूँदे टपक पड़ती। कभी-कभी पण्डितजी का यह उद्योग अनावश्यक प्रतीत होता और मुझे कुछ झुँझलाहट सी हो जाती; पर दूसरे ही क्षण यह भाव हृदय में दौड़ जाता कि पण्डितजी मेरा शोक भुलाने के लिये ही इतना प्रयत्न कर रहे हैं।

"पर बाबूजी, कुछ दिन और बीतने के बाद पण्डितजी की एक नई चेष्टा देखने मे आयी। वे अपने पूर्व-अभ्यास के प्रतिकूल आवाज़ दिये बिना ही बेधड़क अन्दर चले जाते, जिससे कोठरी में भागते-भागते मेरी जान पर आ बीतती। तब मैं बहुत करके कोठरी में ही बैठने लगी। पर जब कभी माताजी पड़ोस में जाती और पण्डितजी दरवाज़े पर रहते, तो वे कोई न कोई वस्तु ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस कमरे में घुस जाते जहाँ मैं बैठी होती। मैं उनको देखते ही कोने में छिपने को दौड़ती तो वे अनावश्यक आश्चर्य प्रकट करके दौड़ जाते। बड़ी दीदी (पण्डितजी की स्त्री) का देहान्त हो जाने के बाद माताजी को घर के काम-काज में सहायता देने का भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा था, अतः रसोई आदि के समय मे मेरा आँगन मे घूमना-फिरना अनिवार्य हो जाता था। ऐसी परिस्थिति में पण्डितजी की समझ में यह मोटी-सी बात क्यो नहीं आती कि वे बेधड़क भीतर घुस जाते हैं ? यह प्रश्न प्रायः मेरे दिल में उठा करता और इसके उत्तर में

पण्डितजी के प्रति सन्देह का भाव उदय हो जाता। पर वह तत्काल विलीन हो जाता। मुझे अपने आप पर क्रोध होता; मुझे अपनी क्षुद्रता ही इस सन्देह का कारण जान पड़ती। बाबूजी, क्या देवालय में भूत की शंका हो सकती है? क्या यज्ञाग्नि से गाँव के जल जाने का सन्देह भी किसी को होगा? पर हाय, पण्डितजी की चेष्टा कुछ ऐसी अस्वाभाविक होने लगी कि मेरा क्षीण सन्देह विश्वास के रूप में बदल गया। मैं अच्छी तरह समझ गई कि पण्डितजी पाप के गर्त्त में गिरने के लिये मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। अब पण्डितजी कभी-कभी सन्ध्या के अन्धेरे में भी मेरे कमरे में कोई चीज लाने के बहाने चले आते और मुझे घबरा कर भागती देख आश्चर्य का भाव दिखला, पर कुछ उदास-सा होकर, लौट जाते। कई बार तो ऐसा हुआ कि मेरा उनसे स्पर्श होते-होते बच गया। मैं भविष्य की चिन्ता में पड़ गई। वह मुझे बड़ा ही भयङ्कर दीख पड़ता था। मैं रात-दिन परमात्मा से अपनी धर्मरक्षा के लिये प्रार्थना करती रहती। एक दिन पण्डितजी ने माताजी से आकर कहा—मैया, मालकिन दुलहिन को अपने यहाँ लड़कियों को सीने-पिरोने की शिक्षा देने के लिये कुछ दिन तक रखना चाहती हैं। बाबू साहब ने डोली भिजवा दी है।

"माताजी ने भोलेपन से कहा—'क्या हर्ज है बेटा, जब तुम्हारी इच्छा है तो दुलहिन को भेज दो। वहाँ अपनी वयस-वालियों के साथ रहेगी तो उसका जी भी लगेगा।' मैं डोली में सवार हुई और जमींदार बाबू की हवेली में पहुँचाई गई। पहले तो मुझे पण्डितजी की इस नई चाल का कुछ अर्थ नहीं जँचा।

मैं कुछ न समझ सकी कि पण्डितजी क्योंकर मुझे जमीदार बाबू के यहाँ भेज रहे हैं। पर वहाँ कुछ दिन रहने के बाद मेरा जो अनुभव हुआ उसे विचारने पर मुझे पण्डितजी के नीच उद्देश्य का पता चल गया। वे मुझे वैभव का सुनहरा रंग और विलास का मतवाला ढङ्ग दिखला कर मेरी विरक्ति को तोड़ना चाहते थे। उन्होंने जान-बूझ कर मुझे प्रलोभनों में फेंक दिया था। वे चाहते थे कि मेरी प्रवृत्ति ही पापोन्मुख हो जाय जिससे उनको अपनी दुष्ट कामना की पूर्त्ति में कठिनाई न हो। माता-जी के घर में रहने तथा मुझसे अनुज-बधू का सम्बन्ध होने के कारण वे मुझे विचलित करने के सभी साधनों का उपयोग नहीं कर सकते थे। एक बात और थी। वे अपनी सदाचार-सुख्याति को भी बड़ी ईर्ष्या से सुरक्षित रखना चाहते थे। वे जमींदार बाबू के पुरोहित, सजातियों के नेता और ग्राम के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। उद्दण्डता से कुछ कर बैठने में कलङ्क का भय था। चतुरता से चलने मे दोनों काम निकलते थे। वे इसीलिये तरह-तरह की चाल चलते थे। हाय री दुर्बुद्धि!"

युवती हठात् चुप हो गई। उसका मुख घृणा का व्यञ्जक हो रहा था। उसके फड़कते हुए ओठों से मानो पुरुष-जाति के प्रति धिक्कार के अनगिनत शब्द निकल रहे थे। वह ऐसी मुद्रा से मेरी ओर देखने लगी कि मैंने लज्जा से सिर नीचा कर लिया पर कुछ ही क्षणों के बाद उसका भाव बदल गया, और वह पहले के स्वर में बोली—

"बाबूजी, जमीदार बाबू के यहाँ दो ही चार दिन रहने के बाद मुझे विश्वास हो गया कि यहाँ का वातावरण दूषित है।

अन्तःपुर में मैंने जिस दासी को देखा, वही नववयस्का, आभूषणों से लदी हुई और रूपवती। उनके हावभाव, रहन सहन और बातचीत को देखकर मैं क्षुब्ध हो उठी। मुझे अपने भविष्य की चिन्ता बेतरह सताने लगी। पर प्रकाश में मुझे वहाँ के लोगों की रुचि रखने के लिये प्रसन्न ही रहना पड़ता। थोड़े दिनों में मैं सभी दासियों से हिल-मिल गई। इसके बाद मुझे इन दासियों के द्वारा भूषण, वस्त्र और द्रव्य का प्रलोभन कितनी बार और कितने ढंग से दिया गया, उसका वर्णन करने के लिये मुझमे यथेष्ट धैर्य नहीं है। हाँ, इतना अवश्य था कि मेरे स्वभाव से परिचित हो जाने के कारण कोई दासी मुझसे खुलकर अपना मतलब नहीं कह सकती। कभी कोई आकर कहती—'मिसराइन जी, बड़े बाबू बड़े हौसले के आदमी हैं। उनसे क्यों नही पत्र लिखकर गहने के लिये प्रार्थना करती हो? विधवा हो, कुछ आगे का ध्यान रखकर पूँजी कर लो। तुम्हारे भी क्या स्वामी हैं कि उनपर भरोसा करोगी! बड़े बाबू ढल गये तो निहाल हो जाओगी। दो ही चार गहने ऐसे बनवा देंगे कि तुम्हें घर से सरोकार न भी रहे तो तुम उनको बेचकर जीवन भर निर्वाह कर लो।' कभी दूसरी आकर कहती—'देखो मिस-राइनजी, आज त्योहार है। तुम भी एक बढ़िया साड़ी के लिये सरकार में अर्जी भेजो। रँगी रँगाई साड़ी पहनना पसन्द नहीं है तो एक सफेद रेशमी साड़ी माँग भेजो। उनके लिये यह कोई बड़ी चीज नहीं है, पर तुम्हारे लिये तो एक रखने की चीज हो जायगी।' दासियों को तो मैं यह कहकर टाल देती कि मुझे गहने-कपड़ों से कुछ मतलब नहीं है, मेरे भाग्य में

उनका भोग बदा होता तो मेरा माँग ही क्यों जलता ? पर जब खुली तौर पर उपहार के रूप में मुझे कोई वस्तु दी जाती तो मुझे पण्डित जी के डर से उसे स्वीकार करना पड़ता। पण्डित जी ने मुझे यहाँ आने के पहले ही सावधान कर दिया था— 'देखो दुलहिन, बाबू साहब की रुचि के प्रतिकूल आचरण मत करना। वे जो कुछ देवें, उसे स्वीकार कर लिया करना।'

माताजी को इसी बीच में उन्होंने मायके भेज दिया। मैं भागकर दुखड़ा सुनाती तो किसको ? पण्डितजी प्रतिदिन पूजा करने के लिए हवेली आते तो बड़ी मालकिन से देर तक घुलघुल कर बातें करते। उनको प्रसन्न करने के लिए केवल गोपी-विरह-सम्बन्धी श्लोकों को ही पढ़कर सुनाते, उनका अर्थ बतलाते। उनके पारस्परिक बर्ताव से अब मुझे सारी बातें पूरी तौर से समझ में आ गईं। पण्डितजी मुझे वहाँ रख कर जमींदार बाबू को भुलाये रखना चाहते थे। बड़ी मालकिन भी मेरे रहने से अपना रास्ता साफ देखती थीं।

'बाबूजी, जब मैं प्रलोभनों के वश न हुई तो एक नई चाल चली गई। मेरा डेरा हवेली के पिछले खण्ड में स्नानागार की बगलवाली कोठरी में दे दिया गया और मेरे साथ सोने के लिये एक दासी नियुक्त कर दी गई। मैं समझ गई कि बाबू साहब दुस्साहस की चरमसीमा लाँघना चाहते हैं। मैं सशङ्क रहने लगी। मैं भाग जाना चाहती थी, पर दासी की उपस्थिति से लाचार हो जाती। एक रात दासी नहीं आई। मैंने अच्छा सुयोग पाकर निश्चय किया कि भाग चलूँ और कुएँ में कूदकर सारी विपत्तियों से मुक्त हो जाऊँ। बारह बजने को था। मैं निकल

कर भाग जाना ही चाहती थी कि एक ऐसी दुर्घटना हुई, जिसके स्मरणमात्र से मेरा हृदय ग्लानि से भर आता है। बाबू साहब का मुसलमान-सईस खिड़की के द्वार से कमरे में घुस आया। इसे इतनी हिम्मत देनेवाला कौन था—जब यह प्रश्न मेरे दिल में उठता है, तो बस, एक ही उत्तर आता है—चरित्र-हीनता के दोष से दूषित जमींदार बाबू के दरबार का वायुमण्डल। बाबूजी, उस दुष्ट मुसलमान ने कोठरी में प्रवेश कर × × ×।"

करुण कथा के इस स्थल पर पहुँचकर युवती ने दीर्घ साँस ली। वह ग्लानि और शोक से अभिभूत हो गई। वह आगे का वृत्तान्त कहना चाहती थी पर कह नहीं सकती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय व्यथाग्नि से जल रहा है। मानो उसने कलेजे को ठण्ढक पहुँचाने के लिये ही बग़ल में रक्खे लोटे को उठाया और दो तीन घूँट पानी पीकर एक ठण्ढी साँस ली।

मैंने कहा—'आपके पास ठण्ढा जल तो न होगा, मँगवा दूँ?' युवती ने लोटे को नीचे रखते-रखते उत्तर दिया—'बाबूजी, यह जल बहुत ठण्डा है।' यह कहकर वह फिर आत्मकथा मे प्रवृत्त हुई। बोली—'हाँ, उस दुरात्मा के प्रवेश करते ही मैं मारे भय के एक क्षण के लिये संज्ञाशून्य-सी हो गई। पर दूसरे क्षण ही मुझे अपने भीतर एक अज्ञात शक्ति की प्रेरणा का अनुभव हुआ। मैंने अपूर्व साहस से उसका सामना किया और दाँतों के प्रयोग से उसके सारे प्रयत्न विफल कर दिए। घर में कुछ हल्ला-सा हुआ। वह नारकीय पकड़े जाने के डर से खिड़की से कूद-कर भागा। ड्योढ़ी के पिछवाड़े वैद्यराज का मकान है। उनके

दरवाजे पर घर के पाँच-सात व्यक्ति लेटे नींद को बुला रहे थे। उसको भागते देख सब उठ पड़े और 'चोर' 'चोर' कहकर शोर मचाते हुए उसका पीछा किया। ड्योढ़ी और गाँव के प्रायः सभी लोग जग गये। वह दुष्ट बात की बात में पकड़ लिया गया। ड्योढ़ी पर लोगो की भीड़ लग गई। जमींदार बाबू दो-चार गण्य-मान्य व्यक्तियो के साथ मेरी कोठरी की जाँच मे आए। उस समय मेरी दशा विचित्र हो रही थी। मुझसे बिना कुछ पूछताछ किए ही सब वापस चले गये। मैं रात भर जड़वत् बैठी रह गई।

"बाबूजी, दूसरे दिन जमींदार बाबू की कचहरी में उस मुसलमान-सईस ने अपनी सफाई में कहा कि उसका मुझसे महीनो का सम्बन्ध है। मेरे बयान की तो आवश्यकता भी न समझी गई। बाबू साहब अपनी असफलता के कारण ईर्ष्या के वशीभूत हो गये थे, इसलिये उन्हे उस नराधम के कथन पर विश्वास होने में देर न लगी। एक साधारण स्त्री की इतनी मजाल कि मेरा तिरस्कार करके मेरे क्षुद्र नौकर की कामना-पूर्ति करे—कदाचित् इसे अपना घोर अपमान समझकर ही बाबू साहब ने मुझे दोषी ठहराकर मेरा अभियोग जातीय पञ्चायत मे अन्तिम निर्णय के लिये भेज दिया। बाबू जी, हर एक मनुष्य दूसरे को अपने ही जैसा समझता है।

"जातीय पञ्चायत ने निर्णय दिया कि जब तक मैं पण्डित जी के घर से निकाल न दी जाऊँ, तब तक पण्डित जी जाति से बहिष्कृत रहेंगे। पञ्चो ने कहा—'पण्डित जी, प्रस्तुत मामले से कम गम्भीर मामलों में भी आपने कई बार 'जातिच्युत' का

निर्णय दिया है। आशा है, आप इस कुलटा को घर से निकाल-कर अपने सिद्धान्त की रक्षा करेंगे।' पण्डितजी को इस निर्णय का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। मेरा अनुमान है कि उन्होंने अपने जातीय नेतृत्व को बनाए रखने के लिये पञ्चों के निर्णय को सिर-आँखों पर रख लिया। पण्डित जी खूब समझते थे कि मुझ पर जो दोष लगाया गया था, वह झूठा था। पर मामला इतना तूल हो गया था, इतनी हद तक पहुँच चुका था कि पण्डित जी से कुछ करते-धरते नहीं बनता था।

"बाबू जी, जिस दिन निर्णय सुनाया गया, मैंने उसी रात को वहाँ से प्रस्थान कर दिया। तीन दिन की लम्बी सफर करके यहाँ आ गई हूँ। कहाँ हूँ, कहाँ जा रही हूँ, यह नहीं जानती। लज्जा, क्षोभ और ग्लानि के कारण मैंने अपनी विपत्ति कभी किसी परिचित व्यक्ति से नहीं कही। आपने मुझसे बहिन का धार्मिक सम्बन्ध जोड़ लिया, इसीलिये आपके अनुरोध को न टाल सकी।"

आत्मकथा समाप्त करते-करते युवती की आँखें मुँद गईं। कोई एक मिनट के बाद उसने फिर हमलोगों की तरफ देखा। विनोद बाबू ने उसके मनोभावों की कुछ भी परवाह न करते हुए मानो उसकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहा—आप भविष्य की चिन्ता न करें। आपको हिन्दू जाति में रखने में हमलोगों को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, यहाँ तो जिन विधवाओं की इच्छा होती है, उनका विवाह भी कर दिया जाता है।

विनोद बाबू देखना चाहते थे कि उसके आन्तरिक भाव

कहाँ तक शुद्ध हैं, उसका यह सब ढङ्ग त्रिया-चरित्र तो नहीं है।

पर उनके इस भूमिकावद्ध प्रस्ताव को सुनते ही युवती फूट-फूट-कर रोने लगी। जब उतना आँसू बह चुका, जितना हृदय के एक आवेग में बहना चाहिये, तब वह आकाश की ओर ताकने लगी। आकाश को थोड़ी देर तक टकटकी लगाकर देखते रहने के बाद उसने हमलोगों पर दृष्टि डाली। उसकी साँस वेग से चल रही थी। उसके ओठ बिल्कुल सूख गये थे, क्योंकि वह रह-रह कर उन्हे जीभ से चाटती थी। एकाएक उसने लोटे को उठाकर फिर दो-तीन घूँटें लगायीं। अनन्तर बड़ी गम्भीरता से बोली—बाबू जी, आज आपको हम अबलाओं के लिये ऐसा प्रबन्ध करने को भी लाचार होना पड़ा?

इसके बाद मैंने विधवा-आश्रम मे रहने से क्या लाभ है, इसको भी थोड़े शब्दों में समझाकर युवती से कहा—आपसे मेरा अनुरोध है कि वहीं चलकर रहें। आपके सम्बन्धियों को भी हम लोग समझा-बुझाकर आपको घर में रखने के लिये राजी कर लेंगे।

युवती ने मेरे कथन को बड़े ध्यान से सुना। वह कृतज्ञ दीख पड़ती थी, पर उसकी कृतज्ञता कुछ और ही प्रकार की थी। वह अपनी सहायता के लिये हम लोगों को मानो बिल्कुल अयोग्य समझ रही थी। वह हम लोगों को दया की दृष्टि से देख रही थी—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार बीच नदी में डूबता हुआ कोई सहृदय वीर उसे बचाने के विफल प्रयास मे किनारे पर खड़े चिल्लानेवाले छोटे बालकों को देखता है!

युवती के कुछ देर तक मौन रहने पर मैंने फिर कहा—

आपको मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी। आप आश्रम में चलकर रहें।

मैंने देखा, युवती का कलेजा फिर उमड़ आया, पर इस बार आँसुओं के न निकलने के कारण उसे अधिक कष्ट हो रहा था। आँखों से आग-सी निकल रही थी, साँस जैसे फूल रही थी।

मैंने पूछा—कहिये तो गाड़ी ले आऊँ, आश्रम यहाँ से दूर है। युवती बेसुध भाव से मुझे देख रही थी। वह 'हाँ' या 'नहीं' कुछ नहीं कहना चाहती थी।

मैं समझ गया कि उसे घोर सन्ताप हो रहा है। अतएव अब उससे कुछ पूछना उचित नहीं। आश्रम में शीघ्र पहुँचाना ही कर्त्तव्य है।

विनोद बाबू और मैं तेजी से स्टेशन आये। पर तब तक वहाँ कोई गाड़ी नहीं आयी थी, इसलिये चौराहे तक जाना पड़ा। कोई पन्द्रह मिनट में हम दोनों किराये की एक घोड़ा-गाड़ी में वापस आये। पर गोदाम मे प्रवेश करते ही हमलोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। युवती का शरीर निश्चेष्ट पड़ा था, वह भौतिक दुःखों से निवृत्ति पा चुकी थी। मैं तो हत बुद्धि सा हो गया। विनोद बाबू विस्मयपूर्वक ध्यान से युवती के मृतक शरीर को देखने लगे। अनन्तर लोटे को उड़ेलकर देखा तो चौंककर पीछे हटते हुए बोले—हाय विनय, इसमें विष भरा था !!

× × × ×

दूसरे दिन मैं अपने ऑफिस में बैठा युवती का हुलिया लिखकर पुलिस में भेज रहा था कि इतने में विनोद बाबू पहुँचे और जेब से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालकर मेरे सामने रखते

हुए बोले—मन्त्री जी, इन्हें स्वीकार कर मेरा नाम आश्रम के संरक्षकों में दर्ज कर लीजिए। कल की घटना से मेरी आँखें खुल गईं। उसने मेरे लिये 'नेत्राञ्जन' का काम किया। यह कह कर विनोद बाबू ने मेरा हाथ चूम लिया।

उन्होंने इलाहाबाद जाना स्थगित कर दिया था!

प्रेम का रहस्य

[१]

उसे लोग शोभा कहते थे, किन्तु स्वयं शोभा उसकी छाया मात्र थी। उसके अंग-अंग की छबि अलौकिक थी। उसी के सौंदर्य के प्रकाश में स्नानकर कलाधर ने कमनीय कान्ति पाई थी। गुलाब के रंग में उसी के कपोलों का प्रतिबिम्ब था, कमल की मनोहरता में उसीके नेत्रों की रचना। अमावस की रजनी उसी के अलकों में गुप्तवास किया करती थी। वसन्त उसीके वैभव-भाण्डार से भिक्षा प्राप्त कर वार्षिकोत्सव मनाने में सफल होता था।

[२]

मैं उसके प्रेम की भूख से विकल था। मेरा वैकल्य साधारण नहीं था, चरम सीमा तक पहुँच गया था। मित्रों की ओर से

मुझे 'उसके प्रेम का पागल' यह उपाधि भी मिल चुकी थी। आठों पहर मेरे नेत्रों के सामने उसी की मधुर मूर्ति विराजती रहती थी, कानों में उसी का कोमल स्वर गूँजा करता था।

मैं निस्सहाय था, मेरा हृदय मेरे हाथ से निकल गया था। मैं विकल था।

[३]

उसने मेरी विकलता को देखा। मैं अधीर होकर उसके सामने गिर पड़ा। आर्त्तस्वर में पुकारा—देवि, शरण दो, रक्षा करो।

मेरी कातरता ने सचमुच उसके हृदय को द्रवित कर दिया, उसकी बड़ी बड़ी आँखों से मोती झरने लगे। मेरे नैराश्य का अंधकार विलीन हो गया। मुझे प्रकाश दीखने लगा।

पहले मुझे आश्वासन मिला और तब वरदान। मैं आनन्द-विभोर हो उठा।

मुख से सहसा निकल पड़ा—शोभे, तेरी जय हो।

[४]

मैं उससे नियमित रूप से मिलने लगा। पहले भी कभी कभी उससे मिलता था। पर पहले मिलता था एक पड़ोसी के रूप में, अब मिलने लगा एक मनोनीत प्रेमी की हैसियत से। मेरे उल्लास की सीमा न रही। जिसे मैं असम्भव समझता था, वह सम्भव हो गया। अंधे को विराट् के दर्शन मिले, अकिञ्चन को कुवेर का ऐश्वर्य हाथ लगा।

ये मेरे अनिर्वचनीय आनन्द के दिन थे। मैं उसके प्रेम-रस में सराबोर रहता था। उसकी सहज चपलता और चञ्चल

सरलता पर मुग्ध था। नित्य उस दिव्याङ्गना से भाँति भाँति की प्रेम-प्रतिज्ञाएँ कराकर मैं अपने को धन्य बनाता था। मेरा भाग्य-नक्षत्र पूर्ण ज्योति से चमक उठा था।

उसके पिता ने हम दोनों के सम्बन्ध के विषय में अनुमति देदी थी।

[५]

उसके पिता की बदली हो गई। इस समाचार को सुनते ही मैं शोभा के आसन्नवियोग से अत्यन्त व्यथित हो उठा। 'हाय, शोभा चली जायगी ?

'मेरे हृदय की रानी—शोभा, मेरे प्राणों की स्वामिनी—शोभा, कल यहाँ से चली जायगी ?

मैं शोभा की वाटिका की ओर दौड़ पड़ा।

वाटिका के बीच में बैठी वह गुलाब की एक माला गूँथ रही थी, बल्कि लगभग गूँथ चुकी थी।

मुझे देखते ही उसने मन्द हास्य से सन्ध्याकालीन शारदीय चन्द्रिका को लज्जित करते हुए कहा—किशोर बाबू, मैं कल जा रही हूँ।

मैंने वाष्प-कुण्ठित स्वर से कहा—और अपने इस दास को छोड़कर ?

शोभा ने उत्तर दिया—हाँ, छोड़कर दास को नहीं, स्वामी को।

'कितने दिनों के लिए ?'

'कल से आगामी मधुमास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी तक के लिए। चतुर्दशी को लौकिक रीति से हम दोनों का विवाह होगा।'

'क्या पिताजी ने यही तिथि निश्चित की ?'

'हाँ।'

'किन्तु शोभे, हम दोनों का विवाह तो कब का हो चुका। इस आडम्बर की तो कोई आवश्यकता नहीं थी।'

'आवश्यकता तो बिलकुल ही नहीं थी। पर पिताजी शास्त्र की मर्यादा का उल्लङ्घन करना उचित नहीं समझते हैं।'

अन्तिम शब्द कहते कहते शोभा ने मेरे गले में माला डाल दी। फिर मेरे मुख की ओर एकटक निहारने लगी।

मैं भी नेत्रों द्वारा उसकी रूप-सुधा का पान करने लगा।

कुछ क्षणों के अनन्तर शोभा ने कम्पित स्वर मे पूछा—सच कहना, किशोर बाबू, क्या तुम्हारा यह प्रेम बराबर एक सा बना रहेगा?

उसके नेत्र सजल हो गये थे और स्पष्ट रूप से प्रश्नवाचक दीख रहे थे।

मेरी सम्पूर्ण आत्मा एक ही भाव से आलोड़ित हो उठी और मेरे मुँह से निकल पड़ा—अवश्य।

शोभा ने तब मेरे वक्षःस्थल मे मुँह छिपाकर बिना शब्द उच्चारण किए ही कह डाला—मैं तुम्हारी हूँ, तुम पर निर्भर हूँ।

[६]

विवाह के पाँच महीने थे। मैंने यह अवधि केवल शोभा के लिए सुख-सामग्री इकट्ठी करने में व्यतीत की। शोभा-निकेतन नामक कमरा बनवाया, शोभानिकुञ्ज नामक वाटिका लगवाई, शोभा-सागर नामक तालाब खुदवाया, शोभा-पुस्तक-भवन नामक पुस्तकालय स्थापित किया। भाँति भाँति के वस्त्राभूषणों और

सजावट की वस्तुओं को मँगाकर उन्हें यथास्थान रख दिया। लोगों ने बड़े कौतुक से मेरी तैयारियों को देखा। मित्रों ने मुझे शोभा जैसी अनिन्द्य सुन्दरी कन्या का प्रेम-पात्र होने के उपलक्ष मे बधाइयाँ दीं। मैं दिन-रात अपने भविष्य-जीवन का सुखमय स्वप्न देखा करता। मिलन की प्रतीक्षा में भी अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है।

इस बीच एक दिन मुझे एम० ए० परीक्षा में फलीभूत होने की सूचना मिली। उस दिन तो मैं सचमुच आनन्द के सागर में बह गया। विश्वविद्यालय के उत्तीर्ण छात्रों में मैं सर्वप्रथम हुआ था। मैंने गर्व से कहा—लक्ष्मी मेरी, सरस्वती मेरी, शोभा मेरी—और मुझे चाहिए क्या ?

[७]

अवधि के तीन महीने बीत गये। शोभा से पत्र-व्यवहार बराबर चल रहा था। मैंने उसके प्रेम-पत्रो को चमकदार शीशों में मढ़वाकर अपने खास कमरे में टँगवा दिया। मुझे ऐसी उच्च कोटि की प्रेम-पूजा में लीन देखकर मेरे कतिपय बालसखाओं ने मुझे छेड़ा भी, पर मैंने ठोस उत्तर देकर सबको चुप कर दिया। कहा—मित्रो, स्वाभाविक प्रेम ही मुझसे यह सब कुछ करवा रहा है। मैंने जिस सुकुमारी षोड़शी सुरबाला को जीवन-सहचरी बनाया है उसे अपना हृदय दे डाला है। शेक्सपियर और कालिदास ने आदर्श प्रेमी और प्रेमिकाओं के जो चित्र खीचे हैं उन्हे मनोयोगपूर्वक पढ़िए और मेरे दृष्टान्त से उनकी तुलना कीजिए।

[८]

विवाह का दिन समीप था। केवल कुछ सप्ताहों की देर थी। मैं कमरे में बैठा शोभा के ध्यान में मग्न था। कल्पना द्वारा उसका अधर पान करके अपनी पिपासा को उत्तरोत्तर बढ़ा रहा था। उसकी सर्वाङ्गीन सुन्दरता पर बिक रहा था। शरीर में पल-पल पर पुलक हो रहा था। प्रेमालाप की काल्पनिक सृष्टि भी जारी थी। उसके सिलसिले में अत्यन्त मधुर प्रसङ्ग आते ही आनन्दातिरेक के कारण मेरा कलेजा धक् धक् करने लगता था। निदान मेरी तन्मयता इतनी बढ़ गई कि मेरा वास्तविकता का ज्ञान क्षणमात्र के लिए एकदम तिरोहित हो गया। आँखें खुली थीं पर सामने की टेबुल और दीवार मे टँगे हुए महात्मा गांधी के चित्र को न देखकर शोभा को देख रही थीं। वह मुझे धोखा देकर भाग गई थी और मेरी हार पर खिलखिला कर हँस रही थीं। मैं झट उठकर खड़ा हो गया और दोनो बाहे फैलाकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ना चाहता ही था कि मेरा दाहिना हाथ डाकिये के चर्म-निर्म्मित थैले से टकरा गया। स्वप्न भंग हो गया। देखा—डाकिया मौलाबख्श लिफाफा लिये खड़ा है। कह रहा है—बाबू जी, ख़त लीजिए।

मैंने अपने को सँभालकर पत्र ले लिया। उसको देखते ही मेरा हृदय खिल गया। शोभा के पिताजी का भेजा हुआ पत्र है! अवश्य विवाह-सम्बन्धी तैयारियों के विषय में कुछ परामर्श लिखा है। उसे खोला, पढ़ा और पढ़कर अर्द्ध मूर्च्छित अवस्था में कुरसी पर लेट रहा। भयानक वज्रपात—बड़ा ही अशुभ समाचार था।

पत्र की पंक्तियाँ ये थी—

किशोर बाबू,

अत्यन्त व्यथित चित्त से आपको यह सूचना देता हूँ कि शोभा शीतला मैया के प्रकोप में पड़ गई थी। केस बड़ा ही ख़राब था। डाक्टरों ने रोग को असाध्य कह दिया था। पर मेरे भाग्य से उसके प्राण बच गये। बड़ी कठिनता से दायी आँख की रक्षा हो सकी। बायीं तो बिलकुल बैठ गई। शीतला मैया ने उसकी सुन्दरता हरण कर ली। अस्तु। जो भावी होता है वह रुक नहीं सकता। आगामी चतुर्दशी को आप अपने इष्ट मित्रों के साथ यहाँ पधारकर विवाह-यज्ञ समाप्त कर मुझे चिन्ता से मुक्त कर दें। विवाह अगले वर्ष के लिए स्थगित करना ठीक नहीं होगा क्योंकि अगले वर्ष शुभ मुहूर्त नहीं है।

भवदीय कुशलाकांक्षी
केशवकुमार वर्मा
आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट,
जजी कोर्ट, इलाहाबाद।

[९]

पन्द्रह दिनों तक मैंने अत्यन्त उदास जीवन बिताया। भाँति भाँति का रोना रोया। हाय, शोभा, तू ने मुझे बड़ा धोखा दिया। मेरे सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये। मैं कहीं का न रहा। तुझे सुखी बनाने के लिए मैंने कौन सा प्रयत्न नहीं किया। पर तू ने यह कैसी विपत्ति बुलाकर सब चौपट कर डाला। तू तो स्वर्ग की परी थी, फिर एक साधारण रोग ने तेरी सुन्दरता को क्यों हर लिया? मुझे ऐसी आपदा की तनिक भी आशङ्का नहीं थी।

मेरी तीव्र कल्पना ने चेचक के बड़े-बड़े धब्बों से विकृत मुख-

वाली एकाक्षी शोभा को देख लिया और मुझे मर्माहत कर डाला। मैं स्थिर नहीं कर सकता था कि क्या करूँ, केशव बाबू को क्या उत्तर दूँ। अब मेरे नेत्रों के आगे शोभा अपने दोनो रूपो में नृत्य करने लगी। दोनों मूर्तियाँ उसीकी थीं पर दोनो मे कितना अन्तर था! एक मन को हरनेवाली, दूसरी उद्वेग को उत्पन्न करनेवाली। मेरे हृदय की विचित्र अवस्था थी। मैं अपने को धोखा देकर शोभा की सौम्य मूर्ति को ही वास्तविक और उसकी विकृत मूर्ति को असत्य मानकर जी बहलाने की व्यर्थ चेष्टा किया करता था। निदान क्रमशः मेरे मानस-पट पर अंकित शोभा का भव्य चित्र क्षीण होते-होते मिट-सा गया और उसका विद्रूप चित्र और भी गाढ़ा रंग पकड़कर स्थायी हो गया।

बुद्धि ने कहा—आत्म-प्रवञ्चना न करो। वास्तविकता से दूर रहने में लाभ नहीं है। अब शोभा वह शोभा नहीं है। वर्तमान शोभा को ध्यान मे रखकर परिणाम पर पहुँचो।

मैंने माथा ठोक लिया। शोभा के सम्बन्ध में की गई आशाओं को निराशा की धधकती चिता में झोंक दिया। जब वे जलकर खाक हो गईं तो मैंने केशव बाबू को लिखा—

श्रद्धेय बाबू जी,

शोभा को तो जो भोगना था वह भोग ही चुकी। उसे अब अङ्गीकार कर मैं भी अपना शेष जीवन दुखी कर लूँ इसमे कोई बुद्धिमानी नहीं है। शोभा के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है, पर परिस्थिति के कारण विवश हूँ। क्षमा करेंगे।

भवदीय कृपाभिलाषी,

किशोर।

पत्र पर जिस घड़ी मेरी लेखनी चल रही थी उस घड़ी मेरे कानों में शोभा का वह प्रश्न गूँज रहा था जो उसने मुझसे विदा होते समय किया था—सच कहना, किशोर बाबू, क्या तुम्हारा यह प्यार सर्वदा एक सा बना रहेगा ? मैंने भावावेश में आकर उत्तर दिया था—अवश्य।

लेखनी रुक रुक कर चल रही थी। एक ओर उसे मेरी अन्तरात्मा का आदेश था—ठहर जाओ; दूसरी ओर स्वार्थ की आज्ञा थी—लिखते जाओ। निदान स्वार्थ ने अन्तरात्मा को डाँटकर कहा—फूटी आँख और चेचक के धब्बे नहीं दीखते हैं ? दुर्बल अन्तःकरण बिलकुल दब गया। निदान पत्र लिफाफे में बन्द कर डाक में डाल दिया गया।

[१०]

मधुमास की चतुर्दशी आ पहुँची। मैं सारा दिन नियति की निर्ममता की गंभीर मीमांसा करता रहा। 'आज ही शोभा का पाणिग्रहण करके मैं धन्य होने को था। यह सम्बन्ध कितना आनन्ददायक होता। शोभा मुझे जितनी प्रिय थी मैं भी उसे उतना ही प्रिय था। हम दोनो का एक सूत्र में बँध जाना एक अत्यन्त अभिनन्दनीय और अलौकिक व्यापार होता। पर क्रूर काल को यह तनिक भी नहीं भाया। उसने शोभा को कुशोभा करके मुझे ऐसा चिढ़ाया कि मैं ही जानता हूँ। मेरे प्रेम के प्याले को उसने चूर चूर कर डाला। उसका बुरा हो, उसका सत्यानाश हो।'

चिन्ता करते करते संध्या हो गई। फिर रजनी का आगमन हुआ। चौदहों कलाओं से चन्द्रिका छिटकाते हुए चन्द्रदेव

आकाश में चढ़ने लगे। देखते देखते दस बज गये। मैंने निराश होकर शय्या की शरण ली और निद्रा का आह्वान करने लगा।

पर देर तक निद्रा नहीं आई। टावर क्लाक ने दो की आवाज दी। मैं हैरान हो गया। निद्रा लाने को मानो नवीन प्रयास करते हुए करवट बदली। तब चादर से मुँह ढाँक ही रहा था कि सहसा किसी घोड़ा-गाड़ी के आने और मेरे मकान के पास ही सड़क पर खड़ी होने के शब्द सुनकर मैं उसी ओर ध्यानस्थ हुआ। दो मिनट भी नहीं बीते होंगे कि एक रमणी धम धम करती हुई कोठे पर चढ़ आई और मेरे कमरे के द्वार पर आकर ठिठक गई। मैं सँभलकर उठ बैठा। देखा—शोभा अपने वीभत्स रूप को लिये सामने खड़ी है। एक आँख समसुच बैठ गई है। चेचक के बड़े और गहरे धब्बों से मुख भयानक दीख रहा है। गौर वर्ण का स्थान मलिन श्याम ने ग्रहणकर लिया है।

उसे देखकर मैं घोर विपत्ति में फँस गया।

शोभा ने पृथ्वी पर माथा टेककर दूर ही से मुझे प्रणाम करके कहा—किशोर बाबू, मैं शोभा हूँ।

मैंने सिर नीचा करके कहा—शोभा, आओ, बैठो। मेरे हृदय में धड़कन प्रारम्भ हो गई थी। बुद्धि कुण्ठित हो रही थी।

शोभा—मैं अब आपके समीप बैठने योग्य नहीं रही। बस आपसे दो एक प्रश्न का उत्तर सुनने आई हूँ। उत्तर लेकर अभी लौट जाऊँगी।

मैं—पूछो, क्या पूछना है?

शोभा—आपने मुझसे प्रेम किया था या मेरे शरीर से? मैं उत्तर न दे सका, सिर नीचा किये बैठा रहा।

'पिछली बार आपसे विदा होते समय मैंने जो अंतिम प्रश्न किया था उसके उत्तर में आपने क्या कहा था स्मरण है ?'

मैं चुप रहा।

'अच्छा, यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर देते नहीं बनता है तो न दें। आपको अपनी ओर से मुझसे कुछ कहना है ?'

मैंने बड़ी कठिनता से रुक रुक कर कहा—'शोभा, तुम मुझे बहुत प्यार करती थी। उसी प्यार को स्मरणकर मुझे मुक्त कर दो। मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ।'

शोभा ने कहा—'क्षमा ? किशोर बाबू, अच्छा मैं आपको अभी क्षमा करके मुक्त किये देती हूँ। जरा गर्दन उठाकर एक बार मेरी ओर देख लीजिए, मैं चली।'

मैंने गर्दन उठाकर उसे देखा। क्षणमात्र में उसने अपने मुख से कृत्रिम आवरण खींच कर फेंक डाला। मैंने स्पष्ट देखा, मेरे सामने वही अनवध्याङ्गी शोभा पहले से द्विगुणित आभा छिटकाती हुई सस्मित खड़ी है। मैं आवेश में आ गया। अपने को सँभाल नहीं सका। कुरसी से उछलकर उसकी ओर दौड़ा। शोभा मुसकुराती हुई तीन डेग पीछे हट गई और बोली—किशोर बाबू, पहली शोभा तुम्हारी थी, दूसरी को तुमने ठुकरा दिया, यह तीसरी शोभा है जो शोभा को छोड़कर किसी की नहीं है। अनधिकार चेष्टा मत करो।

मैं अपराधी की भाँति खड़ा हो गया और भग्नोत्साह-सा होकर उसकी ओर मूक दृष्टि से देखने लगा। उसे देखते-देखते मेरा हृदय उमड़ पड़ा। नेत्रों से आँसू गिरने लगे। मुँह से निकला—शोभे, भूल हुई, क्षमा करो।

शोभा ने दौड़कर मेरे आँसुओं को पोंछते हुए कहा—किशोर बाबू, तुम्हीं मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें अत्यन्त कठिन परीक्षा में डाल दिया। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। ख़ैर, जो बीत गया सो बीत गया। उसे एक विनोदमात्र समझो।

कुछ देर तक हम दोनों निस्तब्ध बैठे रहे। अनंतर जब मैं कुछ प्रकृतिस्थ हुआ तो शोभा से पूछा—मेरे द्वारा तिरस्कृत होने पर भी तुमने मुझी को क्यों अङ्गीकार किया?

शोभा ने बड़ी गम्भीरता से कहा—मैं आर्य्यमहिला हूँ। आर्य्यरमणी पति को एक ही बार वरण करती है। उसके प्रेम का आधार है त्याग। वह प्रेम के लिए प्रेम करती है। जब मैंने तुम्हारे चरणों मे एक बार आत्म-समर्पण कर दिया तब फिर तुम चाहे कुछ भी हो जाओ, मैं तो अपने को तुम्हारी ही दासी समझती रहूँगी और अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को तुम्हारी ही सेवा और भक्ति में लगा दूँगी।

मैंने जोर से शोभा को अपने वक्षस्थल की ओर खींचकर कहा—शोभे, तू ने मुझे प्रेम की सच्ची सीख दी। मैं तुझे अपना गुरु मानती हूँ।

शोभा ने हँसते हुए कहा—अच्छा चेला जी, अब तैयार हो जाइए। विवाह-तिथि आज ही है। पिता जी पुरोहित जी के साथ डाक बँगले मे टिके हुए हैं।

चार बजते-बजते जैसे-तैसे विवाह-विधि पूरी हुई। शास्त्र की मर्यादा नष्ट न होने पाई। विवाह के समय पड़ोस के कई वृद्ध सज्जन उपस्थित थे, जिन्हे केशव बाबू ने सूचना देकर बुलवा लिया था।

[११]

दूसरे ही दिन मैंने अपने विवाह के उपलक्ष में भोज दिया। मेरे मित्रों को रात की घटना सुनकर अत्यन्त हर्ष और कौतुक हुआ। भोज के समय मैं अतिथियों की पंक्ति की सीध में टहल रहा था। दो एक मित्रों ने मुझे छेड़ ही दिया। बोले—किशोर बाबू, प्रेम के विषय पर कुछ कहिए।

मैंने कहा—भाई, बाज़ी हारी हुई है, क्या कहूँ। सचमुच प्रेम का रहस्य बड़ा गूढ़ है। मुझ सरीखे चञ्चल व्यक्ति के लिए उसे समझ लेना टेढ़ी खीर है।

मित्रों ने कहा—अच्छा, एक बार रसगुल्ले का परोसा फिर चले।

चोरी का अपराध

(१)

विपिन बाबू साधारण श्रेणी के जमींदार हैं। यदि हिसाब से चलें तो साल में पाँच-सात हज़ार की बचत कर सकते हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश बड़े अपव्ययी हैं। पिता की मृत्यु के बाद उनके द्वारा संगृहीत द्रव्य को थोड़े ही दिनों में वे स्वाहा कर बैठे और अब कन्यादान के उत्सव में खर्च करने के लिये पचास हज़ार रुपये कर्ज़ करके ले आये हैं। कर्ज़ का व्याज बहुत कड़ा है। इसके अतिरिक्त उसकी अवधि भी केवल पाँच ही वर्षों की है। विपिन बाबू को उनके हितचिन्तकों ने बहुत समझाया कि कर्ज़ मत लीजिये, साधारण रीति से ही कन्या का ब्याह कर दीजिये, इसी में कल्याण है। किन्तु विपिन बाबू ने उनकी एक न सुनी। चापलूसों से निरन्तर घिरे रहने के

कारण वे अपनी झूठी प्रशंसा सुनने के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि यथार्थ बातें उन्हें तनिक भी नहीं भातीं। वे जितने बड़े जमींदार हैं उससे अपने को कहीं बड़ा समझते हैं और खर्च का डीलडौल भी वैसा ही रखते हैं। यार-दोस्तों को प्रायः भोज देते रहना, उनको लेकर बड़े आडम्बर से शिकार को जाना, हर दूसरे तीसरे सप्ताह वेश्याओं के मुजरे कराना—ये तो उनके यहाँ के साधारण नियम हैं। चिड़ियो, कुत्तों, भेड़ों और घोड़ों का शौक भी उन्हें उचित से अधिक है। इन पशुओं के पीछे हर महीने न जानें कितने रुपये नष्ट होते हैं। मगर विपिन बाबू को इन सब खर्चों की तनिक भी परवाह नहीं है। बल्कि अपने बड़प्पन के आडम्बर को निभाने के लिये वे उन्हें अनिवार्य्य और उचित समझते हैं। ऐसे विचार-वाले विपिन बाबू अपनी कन्या का विवाह सामान्य रूप से कर डालें, यह कब सम्भव था? पचास हज़ार रुपये का कर्ज़ ही हुआ तो क्या क्षति हो गई? किसी प्रबन्ध से अदा कर दिया जायगा। यह प्रबन्ध कौन-सा था, विपिन बाबू को स्वयं ज्ञात नहीं था। फिर भी उन्होंने अपने को सन्तुष्ट कर लिया कि पचास हज़ार रुपये पाँच वर्षों में वापस कर देना कुछ कठिन नहीं है।

(२)

विवाह की तिथि निश्चित हो गई। आगामी पूर्णिमा को कन्यादान का महोत्सव होगा। आज द्वितीया है। विपिन बाबू ने अपने पुराने विश्वास-पात्र नौकर ऊधो को बुला कर नोटों का पुलन्दा दिखलाते हुए कहा—'ऊधो, देखो, इस कैश-बक्स में सौ-सौ रुपये के पाँच सौ नोट हैं। इन्हें म उस बड़े सन्दूक में

बन्द कर आओ। जब तक सब रुपये खर्च न हो जाँय तब तक इनकी निगरानी करो। रात को सन्दूक के पास ही अपना डेरा रक्खो। समझ गये?'

ऊधो ने विरक्ति के भाव से कहा—'बबुआ जी, समझ गये—अच्छी तरह समझ गये। यह एक ऐसी मोटी सी बात है कि इसमें समझने की कोई बात ही नही है। आपके यहाँ नौकरी करते पच्चीस वर्ष हो गये। बड़े मालिक के समय मे दस-बीस हज़ार रुपये इस सन्दूक में बराबर मौजूद रहते थे—कर्ज़ की नहीं, अपनी ज़मीदारी की आमदनी के। उनकी चौकसी मैं ही करता था, कोई दूसरा नही। लेकिन कभी एक धेले का हेर-फेर नही हुआ। इन काग़ज के टुकड़ो का क्या मोल है। दो-चार दिन इनकी निगरानी कर देना कोई कठिन काम नहीं है।'

विपिन बाबू भली भाँति समझ गये कि कर्ज़ लेकर उन्होंने ऊधो के हृदय को दुखित कर दिया है। फिर भी उन पर उसकी बातों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वे कुछ गर्म होकर बोले—'क्या बकते हो? पचास हज़ार रुपयों को कागज के टुकड़े कहते हो? जानकर अनजान बनते हो?'

ऊधो ने उसी भाव से कहा—'बबुआ जी, जब ये रुपये अपने नहीं हैं, सब खर्च ही हो जायँगे और फिर ब्याज के साथ इतने और देने पड़ेगे तो मैं इन्हे कागज के टुकड़े कहता हूँ तो क्या अनुचित कहता हूँ? उन्हे तो आफत की पुड़िया कहना भी जुगुत ही की बात है।

विपिन बाबू ऐसे स्पष्ट कथन को बहुत कम सहन करते थे। किन्तु ऊधो उनके स्वर्गीय पिता का खास नौकर था, इसलिये इनको उसकी थोड़ी बहुत इज़्ज़त करनी पड़ती थी। फिर भी वह

अपने क्रोध को पूरा नहीं सँभाल सके। चिल्लाकर बोल उठे—चुप रहो, मैं तुम से बहस करना नहीं चाहता। सीधे बक्स उठा कर सन्दूक में रख आओ।

ऊधो ने मालिक को बहुत क्षुब्ध देखा तो चुप हो गया और बक्स उठाकर उसे सन्दूक में बन्द करने को ले गया।

(३)

विपिन बाबू के पिता पुलिन बाबू बड़े चतुर व्यक्ति थे। वे अपनी जमींदारी के हर प्रबन्ध में दूरदर्शिता से काम लेते थे। कभी आदमी से अधिक ख़र्च नहीं करते थे। उपयोगी कार्यों में धन लगाने के लिये यथाशक्ति तैयार रहते थे, किन्तु निरर्थक एक कौड़ी भी ख़र्च नहीं करते थे। जहाँ तक सम्भव होता था चुन-चुनकर ईमानदार नौकरों को नियुक्त करते थे। ठकुर-सुहाती से उन्हें अशेष घृणा थी। जो यथार्थ बोलते थे उनका वे बहुत आदर करते थे। किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पहले वे उसके सम्बन्ध में अपने हितचिन्तकों की सम्मति अवश्य ले लेते थे। ऊधो उनका बड़ा विश्वासपात्र नौकर था। उसे वे बड़ी श्रद्धा से देखते थे। मुंशी देवीदयाल दीवान के प्रति भी उनका अच्छा ख़्याल था। मुंशी जी ज़रूर ईमानदार थे लेकिन उनमें एक दोष यह था कि कुछ डरपोक थे, इसलिये कभी-कभी उचित कहने में हिचक जाते थे। पुलिन बाबू ऊधो को इसलिये सबसे अधिक पसन्द करते थे कि वह बेधड़क आदमी था। जिस बात को उचित समझता था उसे बिना संकोच के ठेठ रूप में मालिक के सामने कह डालता था। उसकी सचाई की विपिन बाबू ने कई बार परीक्षा ले ली थी।

अपने क्रोध को पूरा नहीं सँभाल सके। चिल्लाकर बोल उठे—चुप रहो, मैं तुम से बहस करना नहीं चाहता। सीधे बक्स उठा कर सन्दूक में रख आओ।

ऊधो ने मालिक को बहुत क्षुब्ध देखा तो चुप हो गया और बक्स उठाकर उसे सन्दूक में बन्द करने को ले गया।

(३)

विपिन बाबू के पिता पुलिन बाबू बड़े चतुर व्यक्ति थे। वे अपनी ज़मींदारी के हर प्रबन्ध में दूरदर्शिता से काम लेते थे। कभी आदमी से अधिक ख़र्च नहीं करते थे। उपयोगी कार्यों में धन लगाने के लिये यथाशक्ति तैयार रहते थे, किन्तु निरर्थक एक कौड़ी भी ख़र्च नहीं करते थे। जहाँ तक सम्भव होता था चुन-चुनकर ईमानदार नौकरों को नियुक्त करते थे। ठकुर-सुहाती से उन्हें अशेष घृणा थी। जो यथार्थ बोलते थे उनका वे बहुत आदर करते थे। किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पहले वे उसके सम्बन्ध में अपने हितचिन्तकों की सम्मति अवश्य ले लेते थे। ऊधो उनका बड़ा विश्वासपात्र नौकर था। उसे वे बड़ी श्रद्धा से देखते थे। मुंशी देवीदयाल दीवान के प्रति भी उनका अच्छा ख़्याल था। मुंशी जी ज़रूर ईमानदार थे लेकिन उनमें एक दोष यह था कि कुछ डरपोक थे, इसलिये कभी-कभी उचित कहने में हिचक जाते थे। पुलिन बाबू ऊधो को इसलिये सबसे अधिक पसन्द करते थे कि वह बेधड़क आदमी था। जिस बात को उचित समझता था उसे बिना संकोच के ठेठ रूप में मालिक के सामने कह डालता था। उसकी सच्चाई की विपिन बाबू ने कई बार परीक्षा ले ली थी।

पुलिन बाबू के साथ ऊधो ने दो युग बिताये थे। वह उनकी अन्तिम घड़ी तक अपने स्वभाव के अनुसार उनसे स्पष्ट ही बोलता रहा। पुलिन बाबू ने अपने एकमात्र पुत्र विपिन को उत्तम-से-उत्तम शिक्षा देने के लिये जो कुछ प्रयत्न चाहिये, सब किये। पर दुर्भाग्यवश वह लड़का दिन-दिन बिगड़ता ही गया। मरने के समय पुलिन बाबू को यदि किसी बात की चिन्ता थी तो वह यही कि उनके पश्चात् उनका पुत्र उनके नाम को डुबो देगा। तो भी उन्होंने साँस रुकने के कुछ घण्टे पहले क्षीण आशा से अपने कुछ पुराने नौकरों को पास बुलाकर कहा—मेरे सुख दुख के साथियो, तुम लोगों ने जिस सच्चाई से मेरे प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है उसका पुरष्कार तुम्हें ईश्वर देगा। अब तो मैं दूसरे लोक की यात्रा कर चुका हूँ। मुझे एक ही बात चैन से नहीं मरने दे रही है। वह है विपिन का भविष्य। अब तुम्हीं लोगों का भरोसा है। तुमलोगों से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि विपिन को सन्मार्ग पर लाने की बराबर चेष्टा करते रहना और मुझे स्मरण कर उसके कुव्यवहारों पर ध्यान नहीं देना। इतना कहते-कहते पुलिन बाबू भावावेश में पड़कर रुक गये और उनकी बूढ़ी आँखों से गरम आँसू की दो-चार बूँदें ढुलककर उनके चिपके हुए गालों के गड्ढों में आ जमीं। इस करुण दृश्य को देखकर उपस्थित कोई नौकर हृदय को नहीं थाम सका। सबके नेत्र सजल हो गये।

मुंशी देवी-दयाल ने बड़ी कठिनाई से ढाढ़स बाँधकर कहा—'सरकार अपनी आत्मा को तनिक भी दुःखित नहीं करें। सरकार के पुण्य प्रताप से सब भला ही होगा। बबुआ जी को

जरूर सुधार लेंगे—हमलोग इस बात की प्रतीज्ञा करते हैं।'

ऊधो गमछे से अपने आँसू पोंछ रहा था। मुंशी जी की यह प्रतिज्ञा उसको वैसी अच्छी न लगी। उसने खाँसकर अपने स्वर को दृढ़ करते हुए कहा—'सरकार तो अब मनुष्य से देवता होने को जा रहे हैं। ऐसी घड़ी में मैं वही कहूँगा जो कर सकूँगा बबुआ जी किसी की बात माननेवाले नहीं हैं। भला सरकार के सामने जब नहीं सुधरे तब पीछे क्या सुधरेंगे? लेकिन मैं अपनी ओर से कर्त्तव्य-पालन करने में त्रुटि नही करूँगा—यह मैं सरकार के चरण छूकर कहता हूँ।' इतना कहकर ऊधो ने पुलिन बाबू के चरणों में अपना मस्तक नवाया।

पुलिन बाबू ने ऊधो के सिरपर हाथ रखकर उसे वाष्पगद्गद् कण्ठ से आशीर्वाद दिया और कहा—'मैं इतना ही चाहता हूँ, ऊधो, कि तुम विपिन को कभी मत छोड़ना।'

ऊधो ने कहा—'सरकार' अब तो यह द्वार तभी छूटेगा जब यह चोला बदल जायगा। आपके नमक से यह देह पली है; दूसरी जगह इसका निबाह नहीं होगा।' पुलिन बाबू को ऊधो पर इतना विश्वास था कि उसके थोड़े से आश्वासन से भी उनकी चिन्ता बहुत कुछ कम हो गई।

इस स्वामी-भृत्य-सम्मेलन के पाँच-छः घण्टे बाद ही पुलिन बाबू ने इह-लोक-लीला समाप्त कर दी।

(४)

पिता के देहावसान के बाद विपिन बाबू पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गये। अब सारी सम्पत्ति के एकमात्र अधिकारी वे ही थे। स्वार्थी कुसंगियों की बन आई। वे इनके द्वारा अपना उल्लू सीधा

करने लगे। मुंशी देवी-दयाल खूब छट-पटाते थे—चाहते थे कि नये मालिक अपनी जमींदारी की देख-रेख किया करें और कुटेवों से दूर रहें। पर विपिन बाबू के यहाँ इनकी दाल नहीं गलती। मुंशी जी बराबर अपनी युक्तियाँ पेश करते लेकिन बराबर असफल ही हुआ करते। विपिन बाबू साफ कह देते थे—'आप मेरे नौकर हैं। मैं जो कहा करूँ आप उसे करते जायँ। आप मेरे ऊपर शासन करने का कष्ट न उठावें।' मुंशी जी अपना-सा मुँह लेकर रह जाते। ऊधो की भी ऐसी ही दशा थी। उसे तो एक बार नौकरी से जवाब भी दे दिया गया था। उस अवसर पर उसने विपिन बाबू से कहा था—'बबुआजी, नौकरी तो बड़े सरकार की दी हुई है। जब तक जिऊँगा, यहीं पड़ा रहूँगा। चाहे जी में आवे खाने को दीजिये या भूखों मार डालिये। मैं यहाँ से टल नहीं सकता।' तब से विपिन बाबू अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी उसे निकल जाने को नहीं कहते। ऊधो अपने कर्त्तव्य-पालन में कभी त्रुटि नहीं करता। इससे विपिन बाबू को भी उसकी ईमानदारी में पूरा विश्वास था।

(५)

उस दिन जब मुंशी देवी-दयाल के लाख मना करते रहने पर भी विपिन बाबू पचास हजार रुपये कर्ज़ कर ले आये तो मुंशीजी का काला चेहरा इतना मुरझा गया कि मालूम होता था कि उनके मुँह पर स्याही पोत दी गई हो। दीवान खाने में सिर पर हाथ रक्खे चिन्तामग्न बैठे थे। इसी समय ऊधो ने उनके पास पहुँच कर कहा—'कहिये, मुंशी जी, क्या सोच रहे हैं?

मुंशी जी ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—'क्या कहूँ, ऊधो,

बुद्धि कुछ काम नहीं करती। अब यह स्टेट चौपट हो गया। इस बुढ़ापे में कहाँ ठिकाना लगेगा यही सोच रहा हूँ।

ऊधो ने कहा—'बड़े सरकार के सामने तो आपने भीखम बाबा की तरह टेक ली थी कि जैसे होगा बबुआ जी को सुधार कर ही दम लूँगा। आज आप को अपनी ही रोटी की चिन्ता है?

मुंशीजी ऊधो के इस व्यंग से और दुःखित हुए। बोले—'ऊधो, बबुआजी को सुधारने की चेष्टा में जो सफलता की आशा करे वह महामूर्ख है।'

ऊधो ने मुंशी जी के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा—'वह महा मूर्ख है, महा मूर्ख है। और यह महा मूर्ख, माफ कीजियेगा, आप ही हैं। यह सीधी सी बात आप की समझ में पहले क्यों नहीं आई? मालूम होता है आपने कोदो देकर विद्या पढ़ी थी। मैं आपके जैसा पढ़ा होता तो आप देखते कि क्या क्या कर डालता।'

मुंशी जी और ऊधो एक ही उम्र के हैं और युवावस्था से एक ही साथ नौकरी करते आ रहे हैं। इसलिये इन दोनों में पद की बराबरी न रहने पर भी सखा-भाव है।

मुंशी जी ने ऊधो से कहा—'तो तुम्हीं बतलाओ अब क्या किया जाय।'

ऊधो ने कहा—'फिर आप वही महा मूर्ख की-सी बात कर रहे हैं। अजी दीवानजी, जिस बिमारी की दवा ही नहीं है उसे छुड़ाने की चिन्ता क्यों की जाय? देखते जाइए, क्या क्या होता है। अपने राम को तो दो रोटी से काम है। इन का कुछ बिगाड़ें तो अलबत्ते परमेश्वर के घर पकड़े जायँगे। हम लोगों का

दरजा तो आखिर नौकरों ही का है ! बबुआजी अपने कर्मों के आप जवाबदेह हैं, न कि हमलोग। जैसा बोवेंगे वैसा काटेंगे।' मुंशजी ने कहा—ठीक कहते हो, ऊधो। इस विषय में माथा-पच्ची करना बेकार है।'

इसके बाद ऊधो ने चिलम भरी। पहले दीवान जी ने पी, फिर ऊधो ने।

(६)

कैश-बक्स को ऊधो ने बड़े सन्दूक में बन्द कर ताला लगा दिया उस सन्दूक की ताली बराबर उनकी कमर में लटकती रहती थी। जब रात हुई तो ऊधो सन्दूक के पास ही चटाई बिछा कर लेट रहा। घर के सभी लोग विश्राम को चले गये थे। विपिन बाबू का सारा दिन विवाह विषयक चिट्ठा तैयार करने में लग गया था। मुंसी देवीदयाल दिन भर उनके निकट बैठे अनगिनत चीजों के नाम और दाम लिखते रहे। इस काम में मुंशीजी का जी तनिक भी नहीं लग रहा था। इसलिये चिट्ठा लिखते समय उनके सिर में ऐसी खुजलाहट पैदा हो गई थी कि वे एक पंक्ति लिखते तो एक बार सिर खुजलाते। बूढ़े मुंशीजी के मस्तिष्क को चिन्ता ने उस दिन इतना सताया कि रात्रिकाल का आगमन होते ही उन्हें नींद आ गई। मगर यह नींद क्या थी, मानो मुंशीजी के लिये तिलिस्मी दुनियाँ की एक अच्छी खासी सैर। बेचारे रातभर स्वप्न ही देखते रहे। कभी कुछ देखते, कभी कुछ। अभी देखते हैं कि एक भयानक आकार का मुख उनके सामने दाँत खिसोट रहा है, फिर तुरन्त देखते हैं कि एक विशाल पक्षी उनकी शिखा को लम्बी चोंच से थामे उन्हें आकाश-मार्ग

से उड़ाये लिये जा रहा है। वह हठात् उनको नीचे पटक देता है। इतने में यह दृश्य बदल जाता है और मुंशीजी अपने को गृहिणी के पास रोते हुए पाते हैं। रोने का कारण है कि उनकी नौकरी छूट गई है और रोटी का जटिल प्रश्न सामने आया है। इसी तरह प्रातःकाल तक मुंशी जी एक न एक स्वप्न देखते रहे। इस स्वप्नाभिनय की जो अन्तिम सीन थी उसमें मुंशीजी बेतरह पिट रहे थे। मुंशीजी की छाती पर एक भयानक डाकू बैठा था और उन्हे घूँसों का शिकार बना रहा था। अन्त को उस दुष्ट ने घोर गर्जन करते हुए मुंशीजी पर इतना विकट प्रहार किया कि वे अत्यन्त व्याकुल होकर वास्तव में उठ भागे। आँखें बन्द किये ही भागने से बेचारे का सिर दरवाजे से टकरा गया। चोट लगते ही इनकी नींद टूट गई। उन्होंने देखा कि सिर से खून बह रहा है। अब वे स्वप्न लोक के नहीं, वल्कि इसी लोक के जीव थे। उन्हें साफ मालूम हुआ कि मालिक की डेवढ़ी पर भारी कोलाहल मचा हुआ है। वे सिर थामे उसी ओर दौड़े। डेवढ़ी पर पहुँच कर मुंसीजी ने जो कुछ देखा उससे उनके हवास गुम हो गये।

(७)

जिस कोठरी में वह सन्दूक था उसमें सेंध पड़ी थी। ऊधो की कमर से ताली गायब थी, और सन्दूक खुला था। कैश-वक्स का उसमें पता नहीं था। सारे गाँव के लोग इकट्ठे हो गये थे। विपिन बाबू जूतों की ठोकरों से ऊधो की खबर ले रहे थे। ऊधो बार-बार कहता कि बबुआ जी, चोरी मैंने नहीं की है और बार-बार जूतों की ठोकरें खाता। उसके मुखपर

घबराहट का लेश नहीं था। वह दृढ़ निश्चय से अपनी सफाई दे रहा था। उपस्थित लोगों ने विपिन बाबू को थाम लिया और कहा कि थाने में सूचना देकर इसे थानेदार के सुपुर्द कर दीजिये। पुलिस के लोग इससे चोरी क़बूल करवा लेंगे। इस विद्या में वे लोग बड़े निपुण होते हैं। ऊधो के चरित्र पर भिन्न-भिन्न प्रकार की आलोचनायें की जाने लगीं। एक व्यक्ति ने कहा—'बड़े ईमानदार की दुम बना फिरता था। देखा न, कैसा हाथ मारा है? एक मुश्त पचास हज़ार! आखिर क्या होगा—दो-चार वर्षों की कैद, यही न? पचास हजार रुपयों से तो पाँच पुश्तों का भरण-पोषण हो जायगा।'

इस टिप्पणी को सुनकर एक दूसरे सज्जन बोले—'भाई, मुझे विश्वास नहीं होता कि इसने चोरी की है। देखो, इसके मुँह पर जरा मलिनता नहीं है। यह इतना बेपरवाह दीखता है कि जिससे साफ जान पड़ता है कि इसके अन्दर सच्चाई का बल है।'

झट एक तीसरे महाशय बीच ही में टपक पड़े—'रहने दीजिये, भाई साहब, अपनी फिलासफी। उसे पचास हज़ार का बल है, सच्चाई का नहीं, जैसा कि आप समझते हैं। आप किस दुनियाँ के आदमी हैं? इतने दिनों तक जो यह सच्चा बना रहा सो निरी लाचारी से। पुलिन बाबू कितने बुद्धिमान थे! उनसे जो चतुराई करता तो प्राण-रक्षा कठिन हो जाती। अब जो देखा कि नये मालिक बिलकुल बुद्धू हैं, दिन-रात आमोद-प्रमोद में ही लीन रहते हैं तो समझ गया कि यही मौक़ा है। बस, एक ही रात में पचास हज़ार की आमदनी कर ली। जेल में भी तो गरीबों को आराम ही रहता है। दोनों बेले भोजन मिलता

ही है। काम तो जैसे यहाँ करता था वैसे वहाँ भी कर देगा। जी हाँ, यह बात है।'

मुंशीजी अत्यन्त खिन्न हो ऊधो के निकट सिर थामे खड़े थे। उनके विस्मय का ठिकाना नहीं था। क्या ऊधो इतना नीच है? यह हो नहीं सकता। यह सारा षड़यन्त्र किसी पड़ोसी भेदिये का है। वे फिर सोचते—'क्या नहीं हो सकता? क्या यह असम्भव है? पचास हजार रुपये का लोभ क्या कम है? सम्भव है, बहुत सम्भव है कि इसी नमकहराम ने इस काम को किया हो।'

आखिर जब मुंशीजी किसी एक परिणाम पर नहीं पहुँच सके तो लोगों को अपने सपने का हाल विस्तार-पूर्वक सुनाने लगे। उनके चारो ओर श्रोताओं की एक टोली जम गई। उनमें से कई व्यक्ति इनके सपने का उलटा-सीधा अर्थ लगा कर तर्क-शास्त्र का गला घोंटने लगे। मुंशीजी, विकराल मुँह जो आपने देखा सो ही समझिये कि विपिन बाबू का दुर्भाग्य है, जिसके कारण पचास हजार की हानि हुई। आप जो आकाश से पटक दिये गये सो विपिन बाबू क्या पचास हजार के धक्के को सँभाल सकेंगे? जरूर दारिद्र रूपी गड्ढे में गिरेंगे। आप पिट रहे थे—यहाँ यह ऊधो भी तो पिट रहा है। देखिये, सपना झूठा नहीं होता।'

विपिन बाबू तो क्रोध और शोक से पागल हो गये। कुछ देर में दारोगा जी पहुँचे और ऊधो को गिरफ्तार करके थाने में ले गये। वहाँ वह हेरासत में रक्खा गया। कानून की प्रारम्भिक कार्रवाइयों के बाद उसके ऊपर जो दफा लगाया गया उसके अनुसार मुकद्दमा सेसन भेजा गया।

(८)

इधर विपिन बाबू को लोगों ने समझा-बुझाकर कुछ शान्त किया। कन्यादान के उत्सव के शुभ अवसर पर ऊधो ने जो कृतघ्नता की उससे उनका सारा परिवार व्यथित था। पर अब क्या हो सकता था। वर-पक्ष के लोग बहुत विनयी और संयमी थे। इसलिये विना दहेज और बारात आदि के झंझट के ही कन्या का विवाह सरल रीति से सम्पन्न हो गया। विवाह तो हो ही गया पर बेचारे विपिन बाबू का एक भी हौसला पूरा नहीं हुआ। वे बड़े ही उदास रहने लगे। उनकी असमर्थता देखकर यार-दोश्तो ने भी धीरे-धीरे अपनी राह पकड़ी। विपिन बाबू ने पुलिस को घूस देकर ऊधो को कारागार मे कई तरह की यातनायें दिलवाकर उससे रुपये कबूल करवाने की चेष्टा की पर ऊधो ने अपराध स्वीकार नहीं किया।

(९)

नियत तिथि को मुकद्दमा खुल गया। ऊधो कठघरे में खड़ा था। सरकारी वकील उससे प्रश्न कर रहे थे। वह उत्तर दे रहा था।

'क्या तुम्हारा नाम ऊधो है ?'

'जी हाँ हुजूर।'

'तुम विपिन बाबू के यहाँ कितने दिनों से नौकरी कर रहे थे।

'पच्चीस वर्षों से।'

'तुम्हारे ऊपर विपिन बाबू के पचास हज़ार के नोट चुराने का अपराध लगया गया है। यह अपराध सच है या झूठ ?'

'बिलकुल झूठ'—ऊधो ने दृढ़ता से कहा—'मैं इतना नीच

नहीं हूँ कि अपने स्वामी का धन चुरा लूँ। प्रत्येक मनुष्य के कुकर्म या सुकर्म का साक्षी परमेश्वर है। उन्हीं के पवित्र नाम पर मैं निर्भय होकर कहता हूँ कि मैं चोर नहीं हूँ।'

वकील साहब ने फिर पूछा—'घटना की रात तुम रुपयों की निगरानी कर रहे थे। ताली तुम्हारी कमर में थी। दीवार में सेंध मारी गई। तुम्हारी कमर से ताली खींच ली गई और सन्दूक खोलकर कैश-बक्स गायब किया गया। कहो तो तुम कैसी निगरानी कर रहे थे?'

ऊधो ने कहा—'वकील साहब, संयोग की बात है। मैं दिन भर काम करते रहने से थक गया था, इसलिये बहुत देर तक जगा न रह सका। दो बजे के लगभग नींद लग गई। मेरे सो जाने के बाद ही यह घटना घटी है। यदि मैं जगा रहता, हुजूर तो अपनी जान लड़ा देता। पहले मेरी जान जाती त माल जाता।'

ऊधो अपना कथन समाप्त करते-करते मूछों पर ताव दे लगा। उसके नेत्रों से अपूर्व ज्योति निकल रही थी। उस आकृति आभा से पूर्ण थी। वकील साहब, जज साहब अ उपस्थित दर्शकवृन्द उसकी चेष्टा से अत्यन्त प्रभावित हुए। कु देर ठहर कर फिर वकील साहब ने पूछा—'तुम्हें अपनी अ से कुछ कहना है?'

ऊधो ने उत्तर दिया—'वकील साहब, मैं बारबार एक बात को क्या कहूँ। सफ़ाई मेरी यही है कि मैंने चोरी नही है। अपने मालिक का धन चुरा लूँ, यह मुझसे नहीं हो सक फिर जज साहब की ओर रुख करके बोला—'अब हुजूर

तो मुझे छोड़ दें, नहीं तो जेल भेज दें। मैं दोनों में राजी हूँ।'

ऊधो का बयान हो चुकने पर उसके विपक्ष में विपिन बाबू के दो-तीन आदमियो की गवाही ली गई। ये गवाह बनावटी थे। फिर भी वे इस तरह तैयार कराये गये थे कि इनके बयानों से चोरी का अपराध ऊधो पर ही साबित होता था। इन गवाहियो के विरुद्ध ऊधो के पास कोई प्रबल प्रमाण नहीं था। अन्त में सरकारी वकील की बहस हुई। ऊधो ने अपने बचाव के लिये किसी वकील को नियुक्त नहीं किया था। मुकद्दमे का अभिनय समाप्त हुआ। बेचारे ऊधो को पाँच वर्ष की कड़ी कैद की सज़ा मिली। फैसला सुनकर वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। तटस्थ भाव से बोला—'अच्छा हुजूर, जो आपकी मरजी। पाँच वर्ष कैद-खाना ही सही। मगर परमात्मा साक्षी है मैं चोर नहीं हूँ।' मुकद्दमे के प्रारम्भ से लेकर उसके अन्त तक ऊधो ने जिस दृढ़ता का परिचय दिया उससे बहुतेरे लोगों ने यही अनुमान किया कि वह सर्वथा निर्दोष है। विपिन बाबू को तो रुपये खो जाने का बड़ा रंज था। ऊधो के फँस जाने से उन्हें थोड़ा-बहुत सन्तोष मिल गया।

[१०]

ऊधो का जेल-जीवन उल्लेखनीय है। वह जेल के नियमों का पालन इतनी सचाई और तत्परता से करता था कि अधिकारी लोग उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। कुछ ही दिनों में वह कैदियो का सरदार बना दिया गया। अब उसे केवल कैदियो से काम लेने का काम करना पड़ता था। उसने अपने उदाहरण से बहुत से कैदियों को कर्त्तव्यशील बनाया। अब कैदी आपस में

न अधिक लड़ते थे, न गालीगलौज करते थे। सभी ऊधो को पूज्यभाव से देखते थे। जेल के अधिकारी कभी-कभी आपस में कहते—'इस पर अपराध लगाया गया था वह सरासर झूठ मालूम होता है। ऐसा समझदार और सच्चा मनुष्य अपने स्वामी का पचास हज़ार रुपया चुरा ले यह सम्भव नहीं है।' निदान अधिकारियों के सिफारिश से ऊधो पाँच वर्ष पूरा होने के कुछ दिन पहले ही छोड़ दिया गया।

[११]

विपिन बाबू की आर्थिक दशा दिन-दिन बिगड़ती ही गई। पचास हजार रुपये का सूद दुनादुन बढ़ रहा था। व्यापार की मन्दी के कारण वे सूद तक अदा करने में असमर्थ हो गये। अब उनका स्वभाव पहले जैसा नहीं रहा। धीरे-धीरे सारे दुर्व्यसन एक एक करके छूट गये। प्रतिकूल परिस्थिति में पड़ जाने से उन्हे कर्त्तव्य का बोध हुआ। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते थे उनकी चिन्ता भी बढ़ती जाती थी। पर काल किसी के लिये नहीं ठहरता। देखते-देखते पाँच वर्ष बीत गये, केवल एक दिन शेष रह गया। कल सन्ध्या तक का अवकाश है। पर जो पाँच वर्षों में पचास हज़ार रुपये का प्रबन्ध नहीं कर सका वह एक दिन में क्या कर सकता है।

[१२]

मुंशी देवीदेयाल के साथ सारा परिवार शोक-समुद्र में गोते खा रहा है। विपिन बाबू अब अपनी जायदाद के स्वामी सिर्फ एक दिन के लिये हैं। कल सन्ध्या काल से जायदाद महाजन की हो जायगी। मुंशीजी रह-रह कर जँभाई लेते हैं और 'हरे नारायण'

'हरे नारायण' के शब्द उच्चारण करके अपनी विकलता प्रकट कर रहे हैं। विपिन बाबू का मुख चिन्ता से इतना मलिन हो गया है कि वे पहचाने नहीं जाते। उनकी धर्म-पत्नी स्त्री-स्वभाव से विवश होकर रो रही है। ब्याही कन्या भी मायके आई हुई है। इन सारी आपदाओं का कारण अपने ही को समझ कर वह अलग आँसू बहा रही है।

दो-चार इष्ट-मित्रों ने आकर विपिन बाबू को समझा बुझा दिया और चले गये। विपिन बाबू सिर झुकाये बैठे हैं। आन्तरिक व्यथा से वे विह्वल हो रहे हैं। इस विह्वलता मे हठात् उनके मुँह से निकल पड़ा—'ओह! कहाँ है वह दुष्ट? ऐसा जी करता है कि उस नमकहराम को पाऊँ तो अभी कच्चा चबा जाऊँ।'

विपिन बाबू के इतना कहते ही ऊधो—हाँ, सचमुच ऊधो ही—हठात् उनके सामने आकर खड़ा हो गया और शिष्टता-पूर्वक सिर नवाते हुए बोला—'मालिक, नमकहराम हाजिर है। उसे कच्चा चबा जाइए; वह चूँ न करेगा।'

विपिन बाबू ने पहले तो समझा कि उनकी आँखो ने धोखा खाया है, पर दूसरे क्षण जब उन्हे निश्चित रूप से बोध हुआ कि सामने दूसरा कोई नही, पुराना नौकर ऊधो ही खड़ा है तो वे क्रोध से थर-थर काँपने लगे।

मुंशीजी ने चिल्लाकर कहा—"बेअदब, जले पर नमक छिड़कने आया है। समझता होगा—'मालिक अब दरिद्र हो गये, क्या कर सकते हैं।' यह ख़याल छोड़ दे, बच्चू, अभी तेरी मरम्मत करने भर को ताक़त काफी है।"

ऊधो ने स्थिरता से पूछा—'मेरा अपराध?' मुंशीजी ने और

जोर से चिल्लाकर कहा—'अपराध ! तेरा अपराध तुझे नहीं मालूम है, रे शठ ? अपराध क्या साधारण है ? तू इस परिवार की सारी आपदाओं की जड़ है ।'

"क्यों ? कैसे ?"

"तूने पचास हजार रुपये चुराये, इसलिये, ऐसे ।"

"मुंशीजी, मैं परमेश्वर को साक्षी करके कहता हूँ—मैंने मालिक के रुपये नहीं चुराए । किन्तु यदि थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि मैंने ही चुराये, तो इसी कारण मैं इस परिवार की सारी आपदाओं की जड़ कैसे हुआ ?"

मुंशीजी ने उसी ताव से उत्तर दिया—"नीच, तू रुपये नहीं चुराता तो आज इनकी यह दशा नहीं होती ।"

ऊधो ने पूछा—"रुपया नहीं चुराया जाता तो उसका क्या होता ?'

मुंशीजी झट बोल उठे—"क्या होता ? व्याह के उत्सव में ख़र्च होता ।"

"ख़र्च होकर व्याह ही न होता ?"

"तो और क्या तुम्हारा सिर होता ।"

"तो व्याह तो बच्ची का हो ही चुका, वह काम तो परमात्मा की दया से रुका नहीं रहा । रुपये ख़र्च होने से भी चले जाते, चोरी से भी चले गये । इसलिये परिवार की आज जो स्थिति है वह दोनो हालतों में रहती । तो रुपया चुरानेवाला सारी आपदाओं की जड़ कैसे हुआ, मुंशी जी ?"

मुंशीजी ऊधो की युक्तिको सुनकर कुछ देर तक चुप रहे । फिर सोचकर बोले—"दुष्ट, तो क्या इसी कारण तुमने जो रुपया

चुरा लिया सो अपराध नहीं हुआ ? तुम्हारे ऊपर चोरी का अपराध है, तू चोर है।'

ऊधो ने कहा—"मुंशीजी, मैं फिर कहता हूँ कि मैं चोर नहीं हूँ।'

"तो तू यहाँ सिर्फ बहस करने आया है। चला जा यहाँ से, नालायक।"

"मैं यहाँ निरर्थक नहीं आया हूँ। मैं स्वयं चोर नहीं हूँ, किंतु मैंने चोर को पड़का है।"

मुंशीजी अत्यन्त आश्चर्यित होकर बोले—"क्या कहा ? चोर को तूने पकड़ा है ? कहाँ पकड़ा ? कब पकड़ा ?"

"यहाँ पकड़ा है, और अभी पकड़ा है। मालिक की आज्ञा हो तो उसे अभी माल के साथ हाज़िर करूँ।"

[१३]

इतना कहकर ऊधो झट दालान के बाहर बरामदे में चला गया और थोड़ी देर में सिर पर एक बक्स लिये भीतर पहुँचा। इस बार उसने अपनी धोती और कुर्त्ता बदल लिये थे। यह धोती और कुर्ता वही थे जिन्हे पहने हुए यह घटना की रात रुपये की निगरानी में सोया था। वह बक्स भी वही कैस-बक्स था। उसे नीचे रख कर अत्यन्त श्रद्धा से विपिन बाबू के चरणों में मस्तक नवा दोनों हाथ ऊपर को उठा कर ऊधो कहने लगा—"मालिक, जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसकी सत्यता का साची वही अन्तर्यामी घट-घट-वासी परमात्मा है। आपके रुपयों का चोर मैं ही हूँ। मगर फिर भी मैं कहता हूँ कि मै चोर नहीं हूँ। जब आपको कर्ज़ लेने से रोकने मे हमलोग असफल हो गये तो मैं

समझ गया कि सीधी तौर से काम नहीं चलेगा। इसलिये मैंने सोचा कि किसी युक्ति से ही काम लिया जाय। सेंध मैंने ही मारी थी। कमर की ताली मैंने ही तोड़ ली थी। कैशबक्स मैं ही ले गया था और उसे एक गुप्त स्थान में सुरक्षित रख दिया था और फिर आकर सो गया था। मैं जानता था कि मुझे मार पड़ेगी, जेल मिलेगा। पर मैं यह भी समझता था कि बच्ची का व्याह हो ही जायगा और इस चोरी का अन्तिम परिणाम अच्छा ही होगा, क्योंकि मेरा उद्देश्य था कि वे रुपये महाजन को ज्यों के त्यों लौटा दिये जायँ और व्याह में खर्च न हों। पाँच वर्षों में व्याज भी बहुत बढ़ गया होगा, उसको अदा करने का उपाय भी मैंने कर रखा है।"

इतना कह कर ऊधो पृथ्वी पर बैठ गया। उसने कैश-बक्स को खोला। उसमे नोटों का पुलन्दा ज्यों का त्यों धरा था। उसने नोटों को एक एक कर गिन डाला। पश्चात् कमर से एक पोटरी निकाली। उसमें लगभग दो हज़ार रुपये के नोट और कुछ सोने-चाँदी के गहने थे। उसने कहा—"सरकार, ये गहने मेरी स्वर्गीय पत्नी के हैं। इनमें से कुछ मैंने बनवाये थे और कुछ सरकार के यहाँ शादी-व्याह, यज्ञयाजन आदि में मिले थे। जो दो चार रुपये मैं अपने वेतन से प्रतिमास बचाता था वे जमा होकर बीस वर्षों में इतने हुए हैं। यह शरीर आप ही के नमक से पला है। इसलिये इस शरीर से कमाया धन भी सरकार ही का है। इन रुपयों और गहनों के द्वारा व्याज अदा कर दें और मूल रुपया ज्यों का त्यों है। वह वापस कर दें।

इतना कहते-कहते ऊधो की आँखों में आँसू भर आया।

वह तब फिर खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला—'सरकार, अब इस चोर का अपराध क्षमाकर दिया जाय, यही प्रार्थना है।'

(१४)

परिवार की घोर विपत्ति का ऐसा आकस्मिक और सुन्दर रूप से अन्त देखकर मुंशीजी मारे आनन्द के उछलने, कूदने नाचने, गाने और रोने लगे। विपन बाबू तो ऊधो को छाती से लगाकर देरतक सिसकते रहे। उनकी धर्म-पत्नी और कन्या भी आनन्दाश्रु बहा रही थी। वस्तुतः इस हर्षसम्मेलन का सम्यक् रूप से वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा जान पड़ता था कि सब के सब बेसुध हैं। घण्टों के बाद जब लोगों को कुछ होश हुआ तो मुंशीजी झट पगड़ी बाँधकर कचहरी गये और महाजन के रूपये एक एक करके जमा कर आये। उस रात बहुत देर तक चोरीवाली घटना की ही चर्चा होती रही। जब ऊधो को नींद आ गई तो विपिन बाबू और उनकी धर्म-पत्नी उसकी थकावट मिटाने के लिये चुपचाप उसके हाथ-पैर दाबने लगे।

आज से पाँच वर्ष पहले विपिन बाबू ने जूतों की ठोकरों से ऊधो के जिन-जिन अंगो को चोट पहुँचाई थी, वे बड़ी श्रद्धा से उन अंगो मे तेल लगा रहे थे। इतने में ऊधो की नीद टूट जाने से पति-पत्नी के इस पुनीत कार्य्य मे बाधा पड़ गई। ऊधो अपने मालिक और मालकिन का यह व्यापार देखकर प्रेम और भक्ति से विह्वल हो गया। वह उनकी चरण-रज बारबार सिरपर रख कर कहने लगा—"मालिकजी, मालकिनजी, आप दोनो ने यह क्या किया ? मेरे सिरपर कितने बड़े पाप का बोझ लाद दिया ? क्या मैं इस सम्मान के योग्य हूँ ?"

अन्त में फिर स्थिर होकर बोला—"बबुआजी, मेरी यही मनोकामना है कि आप सदैव सन्मार्ग पर चलें। बड़े सरकार की भी यही सदिच्छा थी।"

विपिन बाबू ने इस तरह सिर झुका लिया मानो उन्होंने ऊधो की इस शुभेच्छा को उसकी आज्ञा मानकर शिरोधार्य किया हो।

मेरी प्रोफेसरी

(१)

छात्रावस्था में हम दोनों दो शरीर एक प्राण थे—परस्पर ऐसी मैत्री थी। सुशील बाबू मेरी इच्छाओं के सम्मुख अपनी रुचि की परवा नहीं करते, वैसे ही मैं भी उनकी भावनाओं के समक्ष अपने मन की एक नहीं सुनता। हमलोगों के पारस्परिक स्नेह की चर्चा विद्यालय के अध्यापकों तक फैली हुई थी। वे प्रायः कहते—'जिसे सहपाठियों में प्रेम का आदर्श देखना हो वह सुशील और रमेश का सौहार्द्र देखे।' सेवेन्थ क्लास से लेकर एम० ए० तक हम दोनों ने एक साथ विद्यालाभ किया; पर इतने दिनों के अवकाश में कभी ऐसा नहीं हुआ कि हमने एक दूसरे का जी दुखाया हो। हम दोनो का जीवनोद्देश भी एक ही

था—निःस्वार्थ भाव से शिक्षादान द्वारा देश की सेवा करना।

स्पष्ट शब्दों में हम दोनोंको प्रोफेसरी के पद की अभिलाषा थी। विद्यार्थी-जीवन में हम दोनों मित्र नित्य यही कामना करते—"हे प्रभो! जब हमलोग संसार में पदार्पण करें तो शिक्षण का व्यवसाय हमारे लिए सुलभ कर देना; साथ ही इतनी अनुकम्पा अवश्य करना कि हम दोनों एक ही कालेज में प्रोफेसर के पद पर अधिष्ठित हो जायँ, जिससे यावज्जीवन साथ रहते हुए अध्यापन द्वारा देश-सेवा का कार्य्य सम्पन्न करते रहें।" एम० ए० क्लास में हम दोनों ने एक ही विषय का अध्ययन भी किया था; और दोनों ही प्रथम श्रेणी में बराबर नम्बर लेकर पास हुए। यह विषय और भी आनन्द-वर्द्धक हुआ। निम्न वर्गों की परीक्षाओं मे कभी सुशील बाबू प्रथम हो जाते, और कभी मैं। पर स्नेहातिरेक के कारण हम दोनों मे कभी ईर्ष्या का भाव नहीं आया। प्रत्युत जब सुशील बाबू प्रथम हो जाते तो मैं अधिक हर्ष मनाता, और जब मैं प्रथम होता तब सुशील बाबू। परमात्मा ने एम० ए० के फल बराबर करके हम दोनों की मैत्री से मानों अपनी प्रसन्नता दिखलाई। सुशील बाबू का घर दूर देहात में है। आर्थिक अवस्था से विवश होने के कारण परीक्षा-फल के प्रकाशित होने के बाद शीघ्र ही गृहस्थी के धन्धों की देख-भाल करने के लिए घर जाना पड़ा। बिछुड़ते समय हम दोनों ने एक दूसरे को गले से लगाया। सुशील बाबू ने गद्गद् कण्ठ से कहा—'भाई, मुझे तो न जाने कौन-कौन से झंझट उठाने पड़ेंगे। एक तो मैं कोई समाचार-पत्र नही मँगाता, दूसरे गँवारों की बस्ती होने के कारण मेरे गाँव को पोस्ट आफिस से कम

सरोकार रहता है। पक्ष में एक बार भी डाकिये के दर्शन मुश्किल से होते हैं। आप तो शहर के रहनेवाले हैं, कई मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों के ग्राहक हैं। कहीं हमारे आप जैसों की माँग हो तो शीघ्र लिखेंगे जिससे मैं समय पर प्रार्थना पत्र भेज दे सकूँ। भगवान एक जगह रखने का सुयोग कर दें तो जीवन आनन्द से कटे।' मैंने बड़ी कठिनता से आँसुओ को रोकते हुए कहा—'सुशील बाबू, जगदीश्वर हमलोगों के मनोरथ को अवश्य पूर्ण करेगा। आप निश्चिन्त रहे। मैं विज्ञापन देखते ही आपको सूचना दे दूँगा। सुशील बाबू ने घर के लिये प्रस्थान कर दिया।"

(२)

प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण सारे शहर में मेरी बड़ाई होने लगी। मेरे हितचिन्तकों ने तरह तरह की सम्मतियों से मुझे अनुगृहीत किया। किसीने कहा—'देखो, यह संघर्ष का युग है। केवल एम० ए० पास कर लेने ही से काम नही चलने का। वास्तविक परीक्षा अभी शेष है। इसमे खरे उतर गये तो चाँदी है, नही तो फिर कही के न रहोगे। कोई बोले—नौकरी मे बड़ी प्रतिद्वंद्विता है। उच्च पद प्राप्त करने के लिये बड़े उद्योग—पैरवी की आवश्यकता है।" किसी और ने समझाया—"कोरी सिधाई से बुद्धू समझे जाओगे। आजकल की सभ्यता मे सचाई को स्थान नही है। बड़े होने के लिए चोरी, चुस्ती, चालाकी, इन तीन चकारात्माक विद्याओं की उपासना वांछनीय है।' इन महदुपदेशों के सिलसिले में ही मुझे डिप्टीगिरी, पुलिसआफिसरी, स्कूल-इन्सपेक्टरी आदि भिन्न-भिन्न नौकरियों

की ख़ूबियाँ भी बतलाई गईं। अब मुझे लोग पहले से अधिक सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। कोई मुझे डिप्टी के रूप में देखता, कोई प्रोफेसर के रूप में, कोई किसी और ही हाकिम के रूप में। पड़ोसियों तथा निकट सम्बन्धियों में से बहुतेरो ने मेरे लिये विशेष भोज दिये और उनमें मुझे निमन्त्रित करके विधिपूर्वक बधाइयाँ दीं। सभी मेरे हितेच्छु होने का दावा करते और शुभकामनाओं तथा आशीर्वादों की झड़ी सी लगाते। हाँ, साथही यह भी कहे बिना नहीं रहते—"देखो रमेश बाबू, अब तुम शीघ्र ही कोई उच्चपदाधिकारी हो जाओगे। उस समस हम लोगों का भी ख़्याल रखना।"

एकबारगी इतनी प्रशंसा और इतने आदर का असर मुझपर अच्छा नहीं हुआ। सुशील बाबू की चिरकालीन संगति से हृदय में देश-सेवा के भाव की जो जड़ जम गई थी, वह हिलती हुई सी अनुभूत हुई। मगर मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया, केवल अपने भावीरूप का सुखमय-स्वप्न देखने लगा। अब तक आन्तरिक अभिलाषा प्रोफेसरी के पद के लिए ही थी, पर पहले और अब की दृष्टिविन्दु में भेद पड़ गया था। पहले इस पद को सेवा का एक साधन मात्र समझा था, पर अब उसे सम्मान और अधिकार का प्रत्यक्ष स्वरूप समझने लग गया। अब मैं प्रतिदिन नियमित रूप में समाचारपत्रों के वान्टेड के कालमों पर हमला करता और शिकार न मिलने से हताश होता। गैजेट भी बराबर उलटाया करता और बड़े-बड़े पोस्टों पर जिनकी नियुक्ति के समाचार पढ़ता उनके भाग्य को सराहता। धीरे-धीरे मेरे मन में अज्ञातरूप से ईर्ष्या का बीजारोपण हुआ।

मैं अपनी एकान्त प्रशंसा सुनने में अधिक सुख मानने लगा। पर प्रायः जितने लोग मेरे परिचित थे सभी मेरे सामने ही सुशील बाबू की विशेष प्रशंसा किये बिना नहीं रहते। प्रशंसा का कारण भी था। सुशील बाबू ने एक दरिद्र के घर जन्म लेकर विद्यार्थी-समाज में ख्याति लाभ की थी, और मैंने लक्ष्मी की गोद में पल कर। मैंने कई बार अपने लोगों को परस्पर यह भी कहते सुना कि शिक्षा-विभाग में मेरा प्रतिद्वन्द्वी अगर कोई है तो वह है सुशील बाबू। सच पूछिये तो सुशील बाबू से मेरी तुलना नहीं की जा सकती। सुशील बाबू मुझसे अधिक कुशाग्रबुद्धि हैं। परीक्षाओं मे हम दोनो प्रायः एक से रहे, इसका कारण यही था कि मैं घर की चिन्ताओं से मुक्त था और सुशील बाबू उनसे घिरे हुए।

अधिकार-वासना के वशीभूत हो जाने के कारण मेरी उदारता बहुत कुछ कम हो गई। अतएव सुशील बाबू की चर्चा से मुझे झुँझलाहट-सी होने लगती। कुछ ही दिनो मे मेरी स्वार्थबुद्धि ने मेरी उच्चवृत्तियो को कुण्ठित कर दिया। उसके प्रभुत्व मे पड़कर मन ने कहा—'कहाँ की मैत्री और कहाँ का प्रेम ? यह सब तभी तक निभ सकता है जब तक कोई संसार में प्रवेश न करे। खास कर एक व्यवसायवालों मे मैत्री नहीं चल सकती। सुशील बाबू को अपने साथ करता फिरूँगा तो मेरी उतनी प्रतिष्ठा या उन्नति कभी न होगी जितनी और तरह।" अस्तु, मैंने निश्चय कर लिया कि रास्ता साफ कर लेना ही उचित होगा। संयोग से विलासपुर जुबिली कालेज में दर्शन-शास्त्र के दो अध्यापकों के स्थान खाली हुए। मैंने अपना

प्रार्थनापत्र प्रमाणपत्रों के साथ यथासमय भेज दिया और निश्चित तिथि के ठीक दो दिन पहले सुशील बाबू के नाम भी सूचना के लिए एक पत्र लिख दिया। हाँ, उनके पत्र मे तारीख़ एक सप्ताह पहले की ही दे दी, जिससे बिलम्ब का दोष मुझे न लगे। चूँकि अपने प्रान्त के प्रार्थियों मे मै ही सर्वश्रेष्ठ समझा गया मुझे नियुक्ति-पत्र भेजा गया। उसे पाते ही मैं उछल पड़ा और दूसरे ही दिन विलासपुर के लिए प्रस्थान कर दिया।

(३)

प्रोफेसरो के पद को सुशोभित किये एक सप्ताह भी न बीता था कि कालेज मे दुर्गापूजा की छुट्टी हो गई। मैं अपने घर आया। दूसरे ही दिन सुशील बाबू मुझसे मिलने आये। आते ही उन्होने अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए कहा—'बधाई लीजिये, रमेश बाबू, आप तो प्रोफेसर हो गये।' मैंने अभिवादन करते हुए बड़ी गम्भीरता से कहा—'अत्यन्त खेद है कि कालेज-कौंन्सिल के मेम्बरो ने आपके प्रार्थना-पत्र की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। हम दोनो की योग्यता तो एक ही है। दो स्थान भी खाली थे। बहुत ही बढ़िया अवसर चूक गया।'

सुशील बाबू ने सहज भाव से कहा—"मुझे तो बस चौथे ही दिन आपका पत्र मिला। मैं सीधे यहीं चला आ रहा हूँ।" मैं बनावटी रूप से चौंक कर बोला—"ऐं, पत्र तो मैंने आपको कब का लिख दिया था।"

सुशील बाबू ने मेरे विकृत भावों को गहरी दृष्टि से देखते हुए कहा—आपने पत्र अवश्य पहले ही लिखा था, क्योंकि उसमे आपकी लिखी तिथि कई दिन पूर्व की है, पर डाकवालों

की लापरवाही से मुझे वह विलम्ब से मिला—अथवा यों कहिये कि अभी हम दोनो का एक साथ रहना बदा नहीं था। मैंने आश्चर्य, खेद और विस्मय का स्वाभाविक भाव बनाने की बहुत चेष्टा की, किन्तु जितनी ही चेष्टा करता वह उतना ही कृत्रिम हो जाता।

सुशील बाबू ने तटस्थ भाव से कहा—मैं तब तक किसी स्कूल मे नौकरी किये लेता हूँ। आप से पत्र-व्यवहार होता रहेगा। फिर जब कहीं जगह खाली होगी तब देखा जायगा। दूसरी ट्रेन से सुशील बाबू हाजीपुर चले गये। वहाँ एक हाई स्कूल मे एक जगह खाली थी। वह उन्हें आसानी से मिल गई। उनके बिदा होते समय मैंने कपटी मित्र का बचाखुचा पार्ट भी खेल डाला और सहानुभूति के सैकड़ों शब्द खर्च कर दिये। पर मैं बिलकुल हैरान हो गया जब कि मैंने सुशील बाबू के मुखपर मलिनता की छाया तक नहीं देखी। वे निर्लिप्त के से मेरी सारी बातें सुनते रहे। अन्त को केवल इतना ही कहा—'रमेश बाबू, हम दोनों की प्रबल इच्छा है तो एक न एक दिन परमात्मा अवश्य साथ रहने का अवसर बना देंगे। आप मेरे लिए दुःखी न हों।'

(४)

सुशील बाबू से मेरा पत्र-व्यवहार बाराबर जारी रहा। सच पूछिये तो चिरमैत्री के कारण मैं अपने को उनके प्रेम से उतना मुक्त नही कर सका था जितना नीति के विचार से चाहता था। साथ ही पत्र-व्यवहार बनाये रखना नीति-संगत भी जान पड़ता था। कुछ दिन प्रोफेसरी करने के बाद मुझे अनुभव हुआ

कि प्राइवेट कालेज की प्रोफेसरी से कुछ लाभ नहीं होता। यहाँ वेतन पर्य्याप्त नहीं मिलता। यदि सरकारी कालेज में जगह मिल जाय तो कम वेतन की शिकायत न रहे और ठाठबाट भी पूरा हो। इस बीच में फिर छुट्टी हुई। मैं घर आया। सुशील बाबू फिर मेरे मेहमान हुए। सुशील बाबू के साथ रहने से मेरा जी खूब लगता था। हम दोनों छात्रावस्था में घटी हुई घटनाओं का सिंहावलोकन करते और अतीत जीवन का आनन्द स्मृति द्वारा लूटते। इसलिए सुशील बाबू के आने से मैं एक तरह से बड़ा ही प्रसन्न हुआ। हाँ, समाचारपत्रों के सम्बन्ध में मैं पूर्ण-तया सचेत हो गया। मैं वान्टेड के कालमों को पहले एकान्त में देख लेता, तब उन्हें सुशील बाबू के हाथ में देता। सुशील बाबू यहाँ से दो चार दिन के लिए घर जानेवाले थे। वे मेरे यहाँ विराजमान थे ही, इसी बीच में एक दिन मैंने 'लीडर' में देखा कि सरकारी कालेज, मुजफ्फरगंज, में दर्शन-विभाग के लिए एक अध्यापक की आवश्यकता है। इस विज्ञापन को देख कर मुझे बेहद खुशी हुई। यहाँ तक कि मैं अपने को भूलने सा लगा। पर ज्यों ही शुशील बाबू की याद आई कि मैं गम्भीर हो गया। अब तो उनकी उपस्थिति मुझे बेतरह खटकने लगी। सन्तोष इसी बात की थी कि अबतक उन्होंने लीडर की यह प्रति नहीं देखी थी। प्रार्थनापत्र भेजने की अन्तिम तिथि बहुत ही निकट भविष्य की थी। अस्तु, मैंने अपने कमरे में जाकर जैसे तैसे प्रार्थनापत्र लिखा, उसे लिफ़ाफ़े के अन्दर रखा और ऊपर पता लिख-कर एक पुस्तक के पन्नों के बीच छिपा कर रख दिया और "लीडर" की उस प्रति को भी पुराने पत्रों की ढेरपर फेंक दिया। फिर

मैं बाहर आया। तब तक सुशील बाबू घूम कर आ गये थे और बरामदे में खड़े थे। मैंने उनसे आश्चर्य का भाव दिखलाते हुए कहा—'आज 'लीडर' नहीं दे गया, कदाचित् अब कल दे जाय।'

सुशील बाबू—और दूसरे पत्र तो आ गये हैं न ?

मैं—हाँ, और तो सभी आ चुके हैं।

मैं झट कमरे से पत्रिका और फार्वर्ड उठा लाया और थोड़ी देर तक दोनों खड़े-खड़े उन्हे बाँचते रहे। सुशील बाबू उस रोज दिन भर रहे। सन्ध्या को घर चलने को तैयार हुए। मैंने प्रार्थना पत्रवाले लिफाफे को जेब में डाल लिया और हम दोनों स्टेशन आये। सुशील बाबू को ट्रेन के एक डब्बे में बिठाकर मैं डाक-वाले डब्बे की ओर बढ़ा तो सुशील बाबू ने पूछा—'किधर जा रहे हैं, रमेश बाबू ?' मैंने सम्भ्रम में कहा—'कुछ नहीं भाई, एक ख़त छोड़ने जा रहा हूँ। एक कम्पनी को कुछ माल के लिए लिखा है।' यह कहकर मै बड़ी तेजी से गया और पत्र डाक में डालकर साँस ली। सुशील बाबू के चले जाने के दो तीन दिन के बाद मैंने उन्हे एक पत्र द्वारा उक्त जगह के खाली होने की बात लिख दी। मेरे स्वार्थ ने मुझे दृढ़ विश्वास दिलाया कि पत्र उन्हे समय पर मिलेगा ही नहीं, फिर वे नियत तिथि तक दर-ख़ास्त भेज ही न सकेंगे।

(५)

मुझे दूसरे ही सप्ताह नियुक्ति-पत्र मिला। मैं हर्ष से फूला न समाया। जिस पद पर मैं आसीन था उसके खाली हो जाने से सुशील बाबू कहीं कालेज-विभाग मे प्रवेश न कर जायँ, इस

डर से मैंने अपने सहयोगी गणिताध्यापक जी से कहा—मैं तो सरकारी कालेज, मुजफ्फरगंज जा रहा हूँ। आप जल्दी से अपने भाई को मेरे पोस्ट पर अस्थायी रूप से नियुक्त करा लेवें तो आगे चलकर कदाचित् वह असालतन भी हो जायँ। वे इस प्रान्त के रहनेवाले नहीं हैं, यही दोष है; अन्यथा डिग्री तो उनकी भी प्रथम ही श्रेणी की है। वे निठल्ले यहीं बैठे हैं। जब इस कालेज में घुस जायँगे तब धीरे-धीरे स्थिर भी हो ही जायँगे। गणिताध्यापक महोदय ने मेरे इस प्रस्ताव को उपकार माना। प्रिन्सपल साहब उनपर कृपालु थे ही। उनके भाई बाबू राधारञ्जन सन्याल को भी वे भली भाँति जानते थे। विश्वस्त सूत्र से उन्होंने यह भी जान लिया था कि राधारञ्जन बाबू ने दर्शन-शास्त्र में बहुत अच्छे नम्बर लेकर एम० ए० पास किया है। प्रिन्सपल साहब को इस बात का कटु अनुभव था कि विज्ञापन द्वारा नियुक्ति करने में बहुत समय लगता है और कालेज की कार्य्य-क्षति होती है। अतः उन्होंने अपने दायित्व के बल पर राधारञ्जन बाबू को छः महीनों के लिए अस्थायी रूप से नियुक्त कर लिया। इस कौशल से इस स्थान को पूर्ण करवा कर मैंने पदत्याग कर दिया और गवर्नमेंट कालेज, मुजफ्फरगंज के स्टाफ में बड़ी शान से भरती हुआ। मैंने मन ही मन अपने को धन्य समझा और सुशील बाबू के भोलेपन को कोसा। कितना सीधा आदमी है। मुझ पर बच्चों की तरह विश्वास रखता है, स्वयं अपने लिए कुछ नहीं करता। शिक्षा-विभाग में दो तीन वर्ष रह चुकने पर मैं अनुभव की दृष्टि से सुशील बाबू से काफी सीनियर हो जाऊँगा। फिर वे मेरे प्रतिद्वन्द्वी रह ही नहीं जायँगे। अस्तु।

(६)

कालेज में मेरी अध्यापन-कला की प्रशंसा फैल गई। मैं घमंड में चूर रहने लगा। एक दिन बैठा-बैठा मैं सोच रहा था—'आखिर दो सौ दस प्रार्थनापत्रों में से मेरी ही प्रार्थनापत्र स्वीकृत हुआ, यह बात मेरे लिए कम गौरव की नहीं हुई। जरा आफिस में चलकर देखूँ तो सही कि कैसे कैसे डिग्रीधारियों ने प्रार्थना पत्र भेजे थे।' मैं पैण्ट की जेब में हाथ डाले आफिस मे गया और क्लर्क से, अपनी नियुक्ति के सम्बन्ध की फाइल निकलवा कर कहा—"मुझे अपना प्रार्थनापत्र देखना है, साथ ही और प्रार्थनापत्र भी देखने हैं।" क्लर्क ने जल्दी से एक प्रार्थनापत्र निकाल कर मुझे दिया और कहा—हुजूर का प्रार्थनापत्र तो यही है। मैं प्रार्थनापत्र की हस्तलिपि देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ गया। मैंने मन में कहा—"अरे! सुशील बाबू तो मुझ से भी पोढ़े निकले। इन्होने भी प्रार्थनापत्र भेजा था। तभी तो मुझ से लापरवाही से बोलते थे। खैर, जो हो। अन्तिम विजय तो मेरी ही रही। मैं उस आदमी को बिलकुल सीधा समझ रहा था, मेरी सांसारिक बुद्धि को धिक्कार है!

मैंने क्लर्क से कहा—"नहीं साहब, यह मेरा आवेदनपत्र नहीं है।"

क्लर्क—'जी हाँ, आप ही का है। जरा नीचे ऊपर देख लीजिये। इस पर नियुक्ति का आर्डर पास है।

मैंने पन्ने को उलट कर देखा। नीचे सुशील बाबू की हैन्डराइटिंग में मेरा नाम लिखा था। मैं चौंक पड़ा। कुछ समझ में नहीं आया।

मैंने क्लर्क से कहा—नहीं साहब, फिर भी यह मेरे हाथ का लिखा नहीं।

क्लर्क—'चाहे जो हो। पर इतना जरूर है कि यह प्रार्थनापत्र आप ही का है। जिस दिन प्रार्थनापत्र लेने का लास्ट डेट था उसी दिन आपके एक मित्र ने आकर यह दरख़ास्त प्रिन्सपल के हाथ मे दी थी। क़द लम्बा, रंग काला और शरीर कुछ क्षीण है। प्रिन्सपल से उन्होंने आधे घण्टे तक बातें कीं। उन्होंने ही आपका सारा परिचय उनको दिया। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उन्होंने कहा था कि वे आपके सहपाठी थे। आपकी योग्यता का चित्र खींचकर उन्होंने प्रिन्सपल साहब को मुग्ध कर दिया था।' मैं हक्काबक्का सा हो गया। मैं सोचने लगा कि मैंने तो स्वयं ही अपना प्रार्थनापत्र भेज दिया था, फिर सुशील बाबू ने मेरे लिए यह कष्ट क्यों किया? मेरा सिर घूमने लगा। मैं डेरे पर चला आया और इस रहस्य पर सारी रात तर्क-वितर्क करता रहा। उस रात मुझे तनिक भी नींद नहीं आई। दूसरे दिन मैं कालेज जाने के लिए उद्यत हुआ ही था कि डाकिए ने आकर एक लम्बा सा लिफाफा हाथ मे दे दिया। लिफाफे को देखते ही मैं आश्चर्य में डूब गया। यह वही लिफाफा था जिसमे मैंने प्रिन्सपल के नाम प्रार्थनापत्र बन्द कर के भेजा था। मैंने उसे फिर, ग़ौर से देखा। ऊपर कालेज का नाम लिखना भूल गया था। शहर का नाम मुजफ्फरगंज नहीं लिख कर धोखे से मुख्तारगंज लिख दिया था। मुख्तारगंज गाँव मे मेरी नातेदारी है। वहाँ के लोगों से पत्रव्यवहार अधिक रहने के कारण मुझे यह नाम लिखने का, आवश्यकता से अधिक, अभ्यास हो गया है। लिफाफे पर

डेडलेटर्स आफिस की एक चिट भी सटी थी। अब सारी बातें समझ में आ गईं। मैंने अनुमान किया कि सुशील बाबू ने संयोगवश वह पुस्तक खोली होगी, जिसमे मैंने लिफाफे को छिपा रखा था और मेरी भूल भी देख ली होगी। सम्भव है उस दिन का लीडर भी इन्होने देख लिया हो, क्योकि मुझे उसे छिपाने की इतनी व्यग्रता थी कि होशियारी मेरे हाथ से चली गई थी। यही कारण है कि सुशील बाबू स्वयं यहाँ आये और मेरी ओर से प्रार्थनापत्र देते गये।

होश में आकर मैंने अपने आपको कहा—सुशील बाबू इतने उदार हैं, और तूने उनके साथ इतनी नीचता की! तेरे पतन की हद हो गई।

(७)

थोड़े ही दिनो के अन्दर हाजीपुर स्कूल में पुनः एक शिक्षक की आवश्यकता हुई। मैंने कालेज की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और उसी स्कूल मे नियुक्त हो गया। सुशील बाबू ने मुझे देखते ही बड़े विस्मय से कहा—'रमेश बाबू, आप यहाँ!'

मैंने उनके चरणो पर गिरकर कहा—"मैं अब कालेज की नौकरी नही करूँगा। जहाँ आप रहेगे, वहीं रहूँगा।"

सुशील बाबू ने मुझे उठाकर गले से लगा लिया।

आज तक हम दोनो पहले के से स्नेहभाव से एक साथ रहते हुए स्कूल में शिक्षण का कार्य्य कर रहे हैं, पर सुशील बाबू से उस प्रार्थनापत्र के सम्बन्ध मे कोई बात नहीं हुई।